इस अंक में 'विरोधरस' की प्रथम प्रस्तुति

तेवरीपक्ष

18

तेवरी–विधा को समर्पित प्रस्तुति

परामर्श-डॉ. गोपालबाबू शर्मा,
दर्शन बेज़ार, विश्वप्रताप भारती

संपादक-रमेशराज

Scanned by CamScanner

दर्शन बेजार की तेवरियां

खून से दीवार पर लिक्खी हुई तकदीर है,
सबके सीने में समायी आज कोई पीर है।
दम लगा घुटने धुंए में, है जलन तेजाब की,
सिरफिरे माहौल की ये क्या अजब तस्वीर है।
दो क़दम आगे चला जाता नहीं अब राह में,
जालिमों के जुल्म की हर पांव में जंजीर है।
अब तो मासूमों की आंखें देखतीं कोई न ख्वाब,
उनसे अब हरदम छलकता बेबसी का नीर है।
खौफ़ में सैयाद ने इतने परिंदे कर दिये,
ज़िंदगी जैसे कि उनकी दी हुई जागीर है।
अब ये सर 'बेजार' का [illegible] के मुकाबिल है उठा,
जिनके हाथों में सियास[illegible] की खुली शमशीर है।

२.

हमने जब रुक कर उधर अब एक नजर देखा है,
और लोगों की बहशियत का ही कहर देखा है।
सबके चेहरे पर उदासी की सियाही लेकर,
खौफ में डूबा हुआ सारा शहर देखा है।
सिर्फ आंसू ही तो मासूमों की आंखों में मिले,
हमने जब गौर से हर एक वशर देखा है।
कल तलक जिस पै बहारें थीं रौनक थी घनी,
आज झुलसा हुआ हर एक शजर देखा है।
दोस्तों की मेहरबानी से ही तो हमने अब तक,
आग में जलता हुआ अपना ही घर देखा है।
जब भी 'बेजार' ने आवाज उठायी है यहां,
हमने शूली पै चढ़ा अपना ही सर देखा है।

३.

पिछले वर्षों में हुई है ये तरक्की गांव में,
सिर्फ कागज पर बनी है सड़क पक्की गांव में।
दान में देने को गइया कर्ज होरी ने लिया,
आज ढक पाये न धनिया लाज तन की गांव में।
लड़ मरे माधव व भोलू आलूओं के वास्ते,
सुधि न आयी उनको मुलिया के कफन की गांव में।
फसल अबके बरस की सब सूद में जाती रही,
पिछले हफ्ते से नहीं चल पायी चक्की गांव में।
देखकर सत्ता की लाठी पंचपरमेश्वर डरे
क्यों लगे चौपाल रे 'बेजार' अबकी गांव मे

४.

कहने को तो इस बस्ती में रहते हैं बहुतेरे लोग
बाहर लाठी लिये खड़े है बस्ती को ही घेरे लोग
कैसे जीवित बच पाएंगे जो निर्बल हैं परबस हैं
सिर्फ यही चर्चा करते हैं अब तो सांझ-सवेरे लोग
जल भरने पनिहारिन कोई कैसे पनघट तक जाये
हर पनघट पर खड़े हुए हैं आकर वही लुटेरे लोग
एक अभागिन चीरहरण पै चीखी, रोयी, चिल्लायी
आंखें नीचे किये उधर से चले गये मुंह फेरे लोग
जिनके साथ गले लगकर में दुखसुख में रो लेता था
लगे बांटने घात लगाकर मेरा घर वो मेरे लोग
जो 'बेजार' रात भर जहरीली फुंकारे भरते थे
दिन का हुआ उजाला तो वे दिखने लगे सपेरे लोग

५.

जुल्म आदमी का खुद पै जारी है,
हाथ में हर किसी के आरी है।
एक बहशी जुनून है सिर पर,
उफ् ये हालत भी क्या हमारी है।
बांझ इन्सानियत हुई बैठी,
पांव हैवानियत का भारी है।
लुट गयी आज द्रौपदी यारो!
देखिए कल की क्या तैयारी है।
मौत के सिर पै बांध के सेहरा,
जिंदगी हर क़दम पै हारी है।
कल जला डाला था 'बेजार' का घर,
क्या खबर आज किसकी बारी है।

-अधिशासी अभियंता,यांत्रिक खंड,
लोक निर्माण विभाग, रावतपुर, कानपुर

एक विशिष्ट साहित्यक पत्र
सूर्य का उजाला
संपादक–उपेंद्रपाल सिंह
कृष्णापुरी, अलीगढ़

Scanned by CamScanner

ग़ज़ल में मात्रा गणना और उसके दोष

ग़ज़ल फ़ारसी से उर्दू या हिन्दी में आयी और हिन्दी या उर्दू ग़ज़लकारों के बीच अपना एक विशिष्ट स्थान बनाने में सफल रही। आज ग़ज़ल कहने का प्रचलन एक फैशन की तरह दृष्टिगोचर होने लगा है। ग़ज़ल कहने की कला जिन ग़ज़ल के उस्तादों के पास है, उनकी कहन में तो एक लयात्मक मिठास है। किन्तु आज ऐसे भी ग़ज़लकार ग़ज़ल के क्षेत्र में अपनी भरमार दर्ज करा रहे हैं, जिनके शेर बहर के मापदंडों पर खरे नहीं उतर रहे हैं।

भले ही ग़ज़ल को बहर में लाने का आधार घटक (रुक्न) या घटक समूह (अर्कान) हैं, लेकिन ये घटक या घटक-समूह निश्चित मात्राओं की गणना से परे हों, ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता और न इनके निश्चित दीर्घ या लघु स्वर-क्रम को बदलकर, लयात्मक ओज को बढाया जा सकता है।

ग़ज़ल में चाहे जहाँ मात्रएँ गिराकर ग़ज़ल को बाँधना यह दर्शाता है कि ग़ज़लकार का लयात्मक आधार बीमार है, जिसका उपचार किया जाना आवश्यक है। प्रथम तो ग़ज़ल कहते समय मात्राएँ गिराना ही अपरिपक्वता का द्योतक है, दूसरे मात्राएँ गिराकर पढ़ने से अर्थ का अनर्थ भी पाठक या श्रोता तक सम्प्रेषित हो सकता है। यही नहीं एक छंद के भीतर दूसरा छंद भी सुबकता है। अशुद्ध ग़ज़ल को शुद्ध या सही ठहराने के पक्ष में आजकल जिस तरह ढेरों कुतर्क सामने आ रहे हैं, यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। ग़ज़ल की दुर्गति है।

श्री आर० पी० शर्मा 'महर्षि' ग़ज़ल के छंद-विधान के अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने हिन्दी-उर्दू ग़ज़लकारों के लिए समान रूप से उपयोगी 'हिन्दी ग़ज़ल संरचना एक : परिचय' नामक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि उर्दू में अपनाये जाने वाली बहरों को हिन्दी नाम देकर पृथक नये घटक या घटक समूहों के साथ प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में सराहनीय बहुत कुछ है, किन्तु इस पुस्तक के लेखक ने 'शब्द विभाजन और मात्रा-गणना-तक़्ती के नियम' के अन्तर्गत जिस प्रकार मात्रा गिराकर ग़ज़ल को छंद में बाँधने की तरफदारी की है, उससे ग़ज़ल का लयात्मक स्वरूप ओजमय कम, ओजहीन अधिक परिलक्षित होगा। ग़ज़ल को छंदबद्ध करते हुए 'मेरा को मिरा' की तरह लिखा या पढ़ा जाना कौन-सी समझदारी के अन्तर्गत आता है, यह तो उर्दू वाले जानें, किन्तु हिन्दी में भी अगर यह चलन, फैशन बनेगा तो सोचना पड़ेगा कि हम मात्राएँ गिराकर, जिस प्रकार ग़ज़ल कह या लिख रहे हैं, उससे कहीं अर्थ का अनर्थ तो पाठक या श्रोता तक सम्प्रेषित नहीं हो रहा।

'मेरा' को 'मिरा' क्यों किया जाता है, 'मरा' क्यों नहीं ? यह सवाल हो सकता है हास्यास्पद लगे। किन्तु 'तेरा' की मात्रा गिराकर 'तिरा' किया जाना कैसे-कैसे नये अर्थ के गुल खिलाता हैं, एक नमूना प्रस्तुत है-

तिरी तलब की ये रातें ये ख्वाब कैसे हैं
रोज़ नींद में हम तितलियाँ पकड़ने लगे। (मख्दूम सईदी, लफ्ज वर्ष१ अंक ४)

यहाँ 'तिरी तलब' का एक अर्थ अगर 'तेरी तलब' निकलता है तो दूसरा अर्थ यह भी है कि 'वह तलब जो तैर रही है या तैर चुकी है'। मतलब यह कि 'तिरी' शब्द के अर्थ में असमर्थता का दोष आ जाता है। पूरे के पूरे शेर के अर्थ पर संदेह छा जाता है।

एक दूसरा उदाहरण और देखिए-

न खुदा ही मिला न विसाले-सनम
न इधर के रहे न उधर के रहे।

इस शेर की दूसरी पंक्ति की तक़्ती (विभाजन) श्री आ०पी० 'शर्मा महर्षि' इस प्रकार करते हैं-

न इधर क रहे न उधर क रहे
[illegible] फइलुन फइलुन फइलुन (हिन्दी ग़ज़ल संरचना : एक परिचय, पृ० १७)

Scanned by CamScanner

मात्राएँ गिराकर किया गया यह विभाजन यदि सही है और शायर ने जो बात इस शेर के माध्यम से कही है, वह श्रोता तक ज्यों की त्यों सम्प्रेषित होने में असमर्थ ही नहीं है, बल्कि एक नया अर्थ लेकर उपस्थित है कि 'न इधर करहे, न उधर करहे'। इस प्रकार मात्राएँ गिराने के पश्चात् हम पाते हैं 'के रहे' बड़ी आसानी के साथ 'करहे' में तब्दील होकर अर्थ का अनर्थ बना देता है और सम्पूर्ण शेर में एक गहरे संदेह को जगा देता है।

तीसरा उदाहरण देखिये-

कहाँ को चले, रुको तो सही
न मेरी सुनी न अपनी कही। (हिन्दी ग़ज़ल-संरचनाः एक परिचय, पृ. ३२)

शेर की प्रथम पंक्ति की तक़्ती इस प्रकार की गयी है-

कहाँ कु चले रुको त सही
मफा इ लतुन मफा इ लतुन

उक्त शेर को लिखने में तो मात्रा दोष का ऐब छुपा लिया गया है, लेकिन पढ़ने या तक़्ती करने में यह ऐब उभरकर सामने आ जाता है। मतलब यह कि 'कहाँ को चले,' 'कहाँ कुचले' में तब्दील हो जाता है। इस प्रकार हम पाते हैं कि एक 'कही बात', 'अनकही' और 'अनकही बात', 'कही' बनकर सम्प्रेषित होने लगती है। अर्थ में एक व्यर्थ की शंका चील की तरह जगती है और मूल अर्थ को झपट्टा मारकर चट कर जाती है।

मात्राएँ गिराने की कला को कथित ग़ज़ल के समझदार भले ही ग़ज़ल के शिष्टाचार में शुमार कर लें, किन्तु दोष तो दोष ही होता है जो ग़ज़ल के लयात्मक आधार को बीमार बनाता है। यह सुकर्म जिन्हें भाता है, वे अपने-आप में मगन होते हैं तो होते रहें, लेकिन वे जब भी अपनी ग़ज़लों के शेरों को मात्राएँ गिराकर पढ़ेंगे, उन शेरों पर संदेह के भूत चढ़ेंगे और मूल अर्थ के स्थान पर नये-नये अनर्थ गढ़ेंगे।

मात्रा यदि ऐसे स्थान पर गिरायी गयी है कि अर्थ का अनर्थ नहीं होता तो दोष क्षम्य है, क्योंकि अर्थ तो बोधगम्य है। किन्तु एक ही शेर में कई स्थान पर मात्राएँ गिराने का फैशन यह दर्शाता है कि ग़ज़लकार से ग़ज़ल कहना नहीं आता है-

'कहाँ थी धरा, कहाँ था गगन, किसे था पता।' (हिन्दी ग़ज़ल संरचना-एक परिचय, पृ० ३५)

उपरोक्त पंक्ति की तक़्ती इस प्रकार की गयी है-

कहाँ थि धरा, कहाँ थ गगन, किसे थ पता।

इस पंक्ति में तीन स्थान पर 'थ' पर मात्राएँ गिराया जाना क्या इस बात का द्योतक नहीं कि ग़ज़लकार ग़ज़ल की बहार में खार ही खार पैदा कर रहा है?

मात्राएँ गिराकर ग़ज़ल को बहर में बाँधने वालों में इतनी समझ तो पैदा होनी चाहिए कि मात्राएँ गिराने से 'फूला' का-'फुला' या 'फला'/ 'झूला' का-'झुला'/ 'केला' का-'किला'/ 'खेला' का-'खिला' या 'खुला'/ 'मेला' का-'मला'/ 'रेख' का-'रख'/ 'गाया' का-'गया'/ 'नोचा' का-'नुचा'/ 'हार' का-'ह र'/ 'देश' का-'दश'/ 'वेश' का-'वश' बन जाता है, जो मूलार्थ में नये अप-अर्थ की तरह कुलबुलाता है।

श्री महर्षि मात्रा गिराने की कला से ही ग़ज़ल का भला करना चाहते हैं। उन्होंने उर्दू के कथित नियम 'अलिफ वस्ल' की तर्ज पर हिन्दी के ग़ज़लकारों को भी मात्राएँ गिराकर लयात्मक संधियों के प्रयोग करने की वकालत की है। लयात्मक संधि के नाम पर 'हम और' का-'हमौर'/ 'कुछ और' का-'कुछौर'/ 'कुछ ऊपर' का-'कुछूपर'/ 'कुछ उत्तम' का-कुछूतम' या 'कुछो तम' इत्यादि बनाने की सलाह दी है। सवाल यह है कि यह सलाह कितनी शब्दकोष या शास्त्रीय-संगत है? अगर लयात्मक संधि के नाम पर निरर्थक शब्दों का ही जाल बुनना है तो यह भी तय है ग़ज़ल की आत्मा को ही कुचलना है। बात चलेगी तो यहीं खत्म नहीं होगी, 'कुछ आराम' में लयात्मक संधि करके 'कुछा राम' नामक जन्तु भी बनेगा जो 'मुकाम अपना' को 'मुकामपना' बतायेगा। 'नसीम उन' को-'नसीमुन' नामक स्त्री सुझायेगा, 'हबीब-ईमान' को-'हबीबी मान', समझायेगा। 'नींद आ' से 'नींदा' की तर्ज पर 'दीद आ' को 'दीदा' दर्शायेगा। इस प्रकार समर्थ के बीच के अनर्थ फैल जायेगा। इस गुत्थी को

Scanned by CamScanner

कौन सुलझायेगा? बहरहाल हिन्दी में भी ग़ज़ल की दुर्गति, उसकी नियति बनती जा रही है। इसे अवनति से बचाने के लिये सुमति की आवश्यकता है। यह सुमति जब तक ग़ज़ल की यति-गति में परिलक्षित नहीं होगी, तब तक ग़ज़ल एक रोगी की काया बनी रहेगी। असमर्थ ग़ज़लकारों की माया बनी रहेगी। ग़ज़ल को असमर्थता का दोष अपने आगोश में समेटे रहेगा।

उर्दू में एक बहर है- 'फाइलातुन मफाइलुन फैलुन'। इस बहर में हिन्दी ग़ज़लकारों ने भी ढेर सारी ग़ज़लें कही हैं। 'हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लें' शीर्षक से डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल के सम्पादन में 'डायमंड पॉकेट बुक्स' से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक की कुछ ग़ज़लों का ही यदि हम अवलोकन करें तो पाते हैं कि इनमें भी उक्त बहर के अनुसार गिरी हुई मात्राएँ, अर्थ की भिन्नताएँ सम्प्रेषित होती हैं। नमूने प्रस्तुत हैं-

अब तलक आँख में सहेजा था, जाने क्यों आज ढर गया पानी। (कमलकांत बुधकर, पृ.४१)

उक्त शेर की दूसरी पंक्ति को बहर के अनुसार 'जान क्यूँ आज ढर गया पानी' पढ़ा जायेगा। 'जाने' शब्द 'जान' में बदल जायेगा और इस प्रकार एक अर्थ से एक नहीं दो-दो नये अनर्थ उभर आयेंगे। जो इस ग़ज़ल की अर्थ की गति को दुर्गति की ओर ले जायेंगे।

डॉ० गिरिराज शरण अग्रवाल की पृ० ६२ पर प्रकाशित ग़ज़ल के पाँचवें शेर के पहले मिसरे में 'खुद को मुक्त' शब्द 'खुद कु मुक्त' होकर क्या संदेश देना चाहेगा? यह श्रोता की समझदारी पर निर्भर है, वह इसका क्या अर्थ लगायेगा।

पृ० २३ पर अश्विनी त्यागी की ग़ज़ल के मतले का दूसरी पंक्ति- 'कालापन दीखे है उजालों में' का 'काला' शब्द 'काल' बनाकर पढ़ा जायेगा तो कैसे-कैसे संदेह जगायेगा।

ओंकार गुलशन की पृ० ३३ पर प्रकाशित ग़ज़ल की पाँचवी पंक्ति 'बिन तेरे मकड़ियों के जालों का' में- 'तेरे' शब्द 'तिरे' की भांति पढ़ने पर बिगडा अर्थ देगा और मूल अर्थ का हरण कर लेगा।

पृ० १६० पर शंकर भारद्वाज की ग़ज़ल के मतला का पहला मिसरा 'फ़िर कोई गुल चिनार ले आया' में 'कोई' शब्द 'कई' को ध्वनित करने लगता है। यहाँ भी अर्थ में संदेह जगाता है।

पृ० १५७ पर प्रकाशित विनोद तिवारी की ग़ज़ल के आखिरी शेर का मिसरा 'पेड़ धर आके फल नहीं देते' का 'आके' शब्द मात्र के गिरने के बाद 'आक' को उभारता है। एक सही अर्थ का आत्मा को मारता है।

पृ० ६२ पर प्रकाशित बल्लभ सहाय की ग़ज़ल के तीसरे शेर के पहले मिसरे 'उन्हीं तीरों से हम हुए घायल' के 'से हम' शब्द, 'सहम' में बदल जाते हैं और एक नया अर्थ-बोध जगाते हैं।

ये 'हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लों' के कुछ उदाहरण हैं, जिनमें मात्राएँ गिराने से अर्थ का अनर्थ किस प्रकार होता है, इसे हिन्दी ग़ज़लकारों को समझना ही नहीं, इससे बचना होगा। ग़ज़ल को बड़ी सावधानी से रचना होगा। बेहद सावधानीपूर्वक रची हुई ग़ज़ल का इसी पुस्तक में एक उदाहरण भी है, जिसे दुष्यंत कुमार ने बहर में बाँधते समय प्रथम तो इसे मात्राएँ गिराने के चलन से बचाया है या जहाँ कहीं मात्रा को गिराया है, उससे अर्थ का अनर्थ या सामने नहीं आया है। पृ० १३ पर प्रकाशित दुष्यंत कुमार की ग़ज़ल के मिसरे 'एक जंगल है तेरी आखों में' के 'है तेरी' शब्दों का 'ह तेरी' या 'तू मुझे भूलने की कोशिश में' के शब्द 'की' के स्थान पर 'कि' या 'क' अथवा 'मैं अगर रोशनी में आता हूँ' के शब्द 'रोशनी में' के स्थान पर 'रोशनी मँ' शब्द, मात्राएँ गिराने के उपरांत भी मूल अर्थ या कवि के आशय की लय को भंग नहीं करते। अतः ग़ज़लें 'हिन्दी में भी कही जायें और खूब कही जायें', इस पर आपत्ति किसे हो सकती है। किन्तु उन्हें मात्रा-दोष, लय-भंगता या अर्थ-दोष से बचाया जाना आवश्यक है। तभी हिन्दी में ग़ज़ल का शुद्ध और सार्थक विकास होगा।

–रमेशराज

शीघ्र प्रकाश्य तेवरी संग्रह

इक्कीसवीं सदी के तेवरीकार

हेतु परिचय, छायाचित्र एवं पांच तेवरियां सादर आमंत्रित। संपर्क- रमेशराज, १५/१०९, ईसानगर, अलीगढ़

Scanned by CamScanner

तेवरी-पक्ष **पाठकीय** अलीगढ़

वैचारिक मैथुन जैसा वाक्यांश ठीक नहीं

'ऊधौ कहियो जाय' से चयनित आपकी लम्बी तेवरी समकाल-बोध को दर्शाती है। सर्वथा प्रासंगिक है। लेकिन ५० वें तेवर (शेर) में 'खाल', 'गाल' के अनुक्रम में 'उचार' का प्रयोग कुछ अटपटा-सा। इस संदर्भ में अपनी राय अवश्य दीजिएगा। 'तेवरी का आस्वादन' में व्यक्त विचार पसंद आए। मेरी विनम्र राय में ये विचार समस्त काव्य-विधाओं के आस्वादन पर लागू होते हैं। सिर्फ तेवरी पर ही नहीं।

तेवरी-पक्ष में आपकी हाइकुदार तेवरियां उत्कृष्ट कलात्मकता को साधे दिखीं। इनके लालित्य, शैल्पिक सुघड़ता, भाव-प्रवणता के लिए कोटिशः बधाई। पृष्ठ सं. १२-१३- में तथ्यपूर्ण कथ्य से सहमत हूँ, लेकिन पृष्ठ ३ से ६ पर कई बिन्दुओं से असहमत। आपके कुछेक तर्क अधूरे-अधूरे लगे तो कहीं-कहीं उग्रता अपने चरम पर दिखी। 'वैचारिक मैथुन' जैसा वाक्यांश (पृष्ठ-१३) ठीक नहीं जान पड़ता। कृपया ऐसी अभिव्यक्ति से बचें। **जितेंद्र जौहर**, एन-३३/६ रेणुसागर, सोनभद्र (उ.प्र.)-२३१२१८

संपादकीय व समीक्षा में केवल रदीफ-क़ाफियों का ही जिक्र

आपके प्रगतिशील, प्रामाणिक व क्रियमाण विचारों ने कुछ अधिक सोचने को प्रेरित किया। इसी प्रकार मैंने भी एक पुस्तक लिखी है-'ग़ज़ल-छन्द चेतना'। इसमें लीक से हटकर अनेक क्रांतिकारी शोधालेख, शुद्धिपरक समालोचनाएँ, संतुलित अशआर, ग़ज़लें आदि तथा एक बृहद उर्दू पारिभाषिक शब्दावली (हिंदी अर्थ सहित) आदि सामग्री है। पुस्तक अभी मुद्रणाधीन है। प्रकाशित होने पर भेजने की चेष्टा करूँगा। आपने अपने 'संपादकीय' और 'सीप में समंदर' की समीक्षा में अधिकांशतः केवल रदीफ-काफियों का ही जिक्र किया है। मैंने अपने लेखों में नए-पुराने शायरों के उदाहरण देकर गजल के शिल्प संबंधी अन्य अवांछित तत्वों पर विस्तार से तुलनात्मक स्पष्टीकरण किया है, क्योंकि मैंने हिंदी-संस्कृत व्याकरण व छन्द: शिक्षा तथा संगीतशास्त्र के अतिरिक्त उर्दू सर्फोनह्व (क्वाइद-व्याकरण और इल्मे अरूज आदि का भी गंभीरता से अध्ययन किया है। **महावीर प्रसाद मुकेश** संगीत विद्यार्थी भवन, सिरसा (हरियाणा)-१२५०५५

सचमुच ऐतिहासिक कार्य

नये तेवर की ग़ज़ल को तेवरी के रूप में स्थापित करके आपने सचमुच ऐतिहासिक कार्य किया है। आपकी बहुत-सी तेवरियां 'सूर्य का उजाला' एव अन्य पत्रिकाओं में पढ़ी हैं, और प्रभावित हूँ। 'सूर्य का उजाला' से पता चला कि आप शीघ्र ही तेवरी संग्रह प्रकाशित कर रहे हैं। अपनी कुछ तेवरियां आपके अवलोकनार्थ भेज रहा हूँ। -**जय चक्रवर्ती**, एम-१/१४९,जवाहर विहार, रायबरेली

ग़ज़ल के बदले मिजाज को तेवरी कहने पर इतना हो-हल्ला क्यों?

वैसे तो सभी सच्चे रचनाकारों की रचनाओं में मौलिकता होती है, पर आपकी मौलिकता में भी मौलिकता है। हाइकु विधा काव्य-रचना के लिये मुझे कभी उपयुक्त नहीं लगी, परन्तु आपने हाइकु में तेवरी लिखकर हाइकु का कायाकल्प कर दिया। कमाल हो गया। साहित्य में कुछ खास होना चाहिये, कुछ खास होते रहना चाहिए। आप ऐसा कर रहे हैं, बधाई। ग़ज़ल के तेवर अगर बदले और उसे तेवरी कह दिया तो इसमें किसी को कोई आपत्ति क्यों है, रूप-गुण के आधार पर नामकरण की परंपरा हमारे यहाँ आदिकाल से रही है। श्री कृष्ण एक हैं, भगवान विष्णु एक हैं, लेकिन स्वभाव और चरित्र के अनुरूप उनके हजारों नाम रखे गये, उन्हें स्वीकार किया गया। 'गोपाल सहस्त्र नाम' और 'विष्णु सहस्त्र नाम' इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। फिर ग़ज़ल के बदले मिजाज को तेवरी कहने पर इतना हो-हल्ला क्यों? केवल बहस के लिये न होकर, किसी मुद्दे के लिये हो, तभी बहस सार्थक। -**मदनमोहन शर्मा 'अरविंद'** नटवर निकुंज,

Scanned by CamScanner

गोकुल मथुरा

हाइकु को पहली बार तेवरी के रूप में देखा

तेवरीपक्ष का नवीनांक जन-मार्च-०७ अंक पाकर-देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। आप पुनः अपने उन्हीं तेवरों के साथ अभियान पर हैं- सुखद है। हाइकु को पहली बार तेवरी के रूप में भी देख लिया। इन १० हाइकुदार तेवरियों के लिए विशेष बधाई स्वीकारें। **-अशोक अंजुम, संपादक-प्रयास, ट्रक गेट, कासिमपुर (अलीगढ़)**

मैं तेवरी से बिल्कुल अनभिज्ञ था

रमेशराज की तेवरी को पढ़ना, नया व अच्छा अनुभव रहा। तेवरीपक्ष पढ़ गया हूँ। सच कहूँ, इससे पहले मैं तेवरी से बिल्कुल अनभिज्ञ था। आपने इससे परिचय कराकर मेरे ज्ञान में इजाफा करवाया, आभारी हूँ। आपका संवाद व आत्मीय भाव इसी तरह बना रहेगा, इसी विश्वास के साथ। **-महावीर रवाल्टा, प्रा.स्वा. केंद्र, धरपा, बुलंदशहर-२०३१३१**

पत्रिका देखने में छोटी लगे, घाव करे गंभीर

आपने इस लघुआकार की पत्रिका में इतनी मोहक तेवरियाँ, रोचक आलेख देकर वास्तव में गागर में सागर भर दिया। 'पत्रिका देखने में छोटी लगे, घाव करे गंभीर' की बात को शत-प्रतिशत सार्थक कर रही है। आपके सम्पादकत्व में एक तेवरी-संग्रह **'इक्कासवीं सदी के तेवरीकार'** शीर्षक से प्रकाशित होने जा रहा है, आशा है उक्त संग्रह साहित्य-जगत को विशेषकर तेवरीकारों को नयी दिशा प्रदान करेगा। **जलाल अहमद खां 'तनवीर द्वारा-डाकपाल पोस्ट मांजनपुर- २२५४०६ जिला-बाराबंकी (उ.प्र.)**

आपके विचार ऊर्जादायी लगे

तेवरी-पक्ष में प्रकाशित आपके विचारों से मैं पूर्णतः सहमत हूँ। वर्तमान में 'कलि के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करहिं प्रकास' की भांति अपर्थ काव्य-कला का ढोंग फैलाये हुए हैं। इन दिनों काव्य मंचों का हाल तो अत्यंत दयनीय है। किसी भी विधा में रची गई, पद्य रचना के लिये नियमों का पालन आवश्यक है जो आजकल विपरीत चल रहा है। आपकी क़लम से उतरे आपके विचार मुझे बहुत रुचिकर सक्षम शिक्षाप्रद-ऊर्जादायी लगे। **डॉ.बी.पी.दुबे, होटल संगम के सामने चौराहा, ५, सिविल लाइंस, सागर-४७०००१**

आज ग़ज़लें वाकई ग़ज़ल के व्याकरण में नहीं हैं।

तेवरी-पक्ष की धार बेजोड़ है। 'तुलसी प्रभा, हिन्दी ग़ज़ल विशेषांक' को केंद्र में रखकर आपकी टिप्पणी शतप्रतिशत वाजिब है। हिंदीग़ज़ल के नाम पर प्रकाशित होने वाली अनेकशः ग़ज़लें व्याकरण से च्युत दीखती हैं। इन्हें पढ़कर ग्लानि होती है। आपने जिन-जिन हिन्दी के ग़ज़लकारों का संदर्भ दिया है, उनकी ग़ज़लें वाकई ग़ज़ल के व्याकरण में नहीं हैं। पत्र-लेखक भी हिन्दी-ग़ज़ल का पक्षधर जरूर है, किन्तु जहाँ इस किस्म की व्याकरणिक खामियाँ हैं वहाँ हमेशा वह प्रतिपक्ष में होता है। यदि व्याकरण के अनुशासन का ग़ज़ल में पालन नहीं हो रहा है तो क्या जरूरी है कि ग़ज़ल ही कही जायें। तेवरी में भी जहाँ-जहाँ इस किस्म की खामियाँ हैं, आपको इस पर भी कलम उठानी चाहिए। 'तेवरी' नाम के नाते किसी किस्म की छूट नहीं लेनी चाहिए। हिन्दी के ग़ज़लकार धड़ल्ले से और मनमानी से यह लाभ कसदन ले रहे हैं। हिन्दी-ग़ज़ल में कथ्य पर ही आधारित सभीक्षाएँ आ रही हैं। ग़ज़ल के शैल्पिक रचाव पर बातें करने का साहस नहीं के बराबर हो रहा है। नया व्याकरण जो आविष्कृत किया गया है, उसमें ग़ज़ल का फार्म अट नहीं पा रहा है। आपने व्याकरण सम्मतता की बात उठाई है, यह प्रयास स्वागतेय है। किसी का एक-एक शेर जेहन में उठ कर आ रहा है- 'ना-फहम कर रहे रियाजे-सुखन तबाह, और

Scanned by CamScanner

लुत्फ ये है अहलेसुखन बोलते नहीं'।

आपने बड़ी दमदारी से इस बात को उठाया है। मैं आपके अभिमत का स्वागत करता हूं। आपकी १० हाइकुदार तेवरियां ग़ज़ल के पूरे फार्म में हैं। ग़ज़लकार रदीफ का उतना निर्वाह नहीं कर पाते हैं जितना आपने किया है। ग़ज़ल या तेवरी इन रचनाओं को पढ़ने से कहीं से भी फर्क नजर नहीं आता है। व्याकरण का अनुशासन मंजा-कसा है। 'सीप में समन्दर' डॉ. यायावर की ग़ज़ल कृति का शीर्षक ही गलत है। समन्दर का अर्थ समुद्री कीड़ा है। शीर्षक 'सीप में समुन्दर' होना चाहिए। डॉ. यायावर की ग़ज़लों को दृष्टि में रखकर की टिप्पणी वाजिब है। 'इक्कीसवीं सदी के तेवरीकार' हेतु ग़ज़लें भेजूंगा क्योंकि आपके विचार व्याकरण-सम्मत हैं। नाम चाहे जो भी दिये जायें। **–मधुर नज्मी**, गोहना मुहम्मदाबाद, जिला-मऊ-२७५१०१

हमेशा की तरह

तेवरीपक्ष प्राप्त हुआ। हमेशा की तरह आपकी तेवरियां अच्छी लगीं और समीक्षा लेख भी।

विज्ञप्ति के अनुसार प्रस्तावित तेवरी संग्रह के लिए ५ तेवरियां भेज रहा हूं। **–केशव शरण**, एस २/५६४ सिकरौल वाराणसी-२

रमेशराज साहब का तेवरी शतक-'ऊधौ कहियो जाय' की सभी रचनाएं वर्तमान समाज व्यवस्था व परिवेश पर बहुत ही सटीक व्यंग्य करती हैं, जिसकी जितनी तारीफ की जाय कम है। **–खालिद हुसैन सिद्दीकी**, ए-५८८ संचार विहार कालोनी, आइ.टी.आई. लि. अनकापुर, गोण्डा (उ.प्र.) २७१३०८

हायकुदार तेवरियां लिखना एक नया और स्तुत्य कार्य

तेवरीपक्ष पढ़कर प्रसन्नता हुई। हाइकु तो मैं भी लिखता हूं लेकिन हाइकुदार तेवरियां लिखना एक नया और स्तुत्य कार्य है, जिसमें लयात्मकता का मिलना अच्छा लगा। आपने मुझ जैसे अदना साहित्यकार को तेवरी पक्ष पढ़ने का सुअवसर दिया इस हेतु आभार। भविष्य में प्रकाशन हेतु मैटर भी भेजूंगा तथा इष्ट मित्रों को पढ़ने को भी दूंगा। कवि सम्मेलनों में मित्रों के बीच प्रचार-प्रसार करूंगा। **बदन सिंह मस्ताना**, पड़ुआ रोड भोगांव, मैनपुरी

एक साहब हैं नाम नहीं लूंगा....

हिन्दी ग़ज़ल के विषय में आपकी तल्ख टिप्पणी आपकी नाराजगी का इजहार करती है। वस्तुतः स्थिति यह है कि दुष्यन्त कुमार और श्री बलवीर सिंह रंग के अलावा अभी तक हिन्दी में कोई ऐसा शाइर हुआ ही नहीं, जिसे ग़ज़ल का शाइर कहा जा सके। हो सकता है कोई एकाध और हो। एक साहब हैं नाम नहीं लूंगा, उनके अब तक १५ गजल संग्रह प्रकाशित हुए हैं, पर शायद ही वे यह जानते हों कि ग़ज़ल कहते किसे हैं। या इन पंद्रह ग़ज़ल संग्रहों में कोई ऐसी रचना हो जिसे ग़ज़ल कहा जा सके। कोई बच्चा भी उनको देखे तो कहे, यह तो ग़ज़ल नहीं है। बस वह इतना भर जानते हैं कि दो पंक्तियों की रचना शेर होती है। कुछ शेरों की रचना ग़ज़ल-यही उनका ग़ज़ल का ज्ञान है। लेकिन यह कोई चिंता की बात नहीं है। अगर कोई ग़ज़ल को न समझने वाला शख्स ग़ज़ल कहता है तो उसे कोई रोक तो नहीं सकता? कूड़ा-कचरा घर में होता ही है, सुबह-शाम उसको बुहार कर कूड़े पर फेंक दिया जाता है। हर चीज अपनी जगह ले लेती है। ये मुतशाइर ग़ज़ल कहते रहें, क्या फर्क पड़ता है साहब! वक्त इनको वहां पहुंचा देगा, जहां इनको होना चाहिए। खेतों में खर-पतवार तो होगा ही, पर उसे किसान उखाड़ फेंकेगा। अतः यह कोई चिंता या टिप्पणी करने योग्य बात नहीं है. न इन तथाकथित शाइरों के खिलाफ किसी अभियान की जरूरत है? यह जरूर होता है कि 'दूर से देखने वालों को बोझा ढोने वाले भी बाराती लगते हैं' यह कहना है की त्रिलोचन शास्त्री का। अपने विषय में इतना ही कहूंगा कि पिछले पैंतालिस साल से मैं ग़ज़लें ही कह रहा हूं। अन्य विधाओं में भी लिखता हूं और मेरे पिता श्री कृष्ण मुरारीजी भी ग़ज़ल ही के शाइर थे। उन्होंने ९० वर्ष की आयु पाई और सत्तर वर्ष तक ग़ज़ल की ही शाइरी की। मेरे पिता जी कहा करते थे ग़ज़ल कह लेने भर से कोई ग़ज़ल का शाइर नहीं बन जाता। खुद को साबित करना बहुत मुश्किल है।

–उपाध्याय विजय मेरठी, क्यू. बी.५४/२ हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

Scanned by CamScanner

विरोध-रस

(शोध)

लेखक-रमेशराज

Scanned by CamScanner

विरोध-रस

समाज में हमेशा ही सबकुछ सही घटित नहीं होता और हमेशा स्थितियाँ-परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं बनी रहतीं हैं। मनुष्य से मनुष्य के बीच के सम्बन्धों में जब में कटुता उत्पन्न होती है, रिश्तों में स्वार्थ, धन, मद, मोह, अहंकार अपनी जड़ें जमाने लगता है तो स्वाभविक रूप से खिन्नता, क्लेश, क्षोभ, तिलमिलाहट, बौखलाहट, उकताहट, झुँझलाहट, बेचैनी, व्यग्रता, छटपटाहट, बुदबुदाहट, कसमसाहट से भरी प्राणी की आत्मा क्रन्दन प्रारम्भ कर देती है। इसी क्रन्दन का नाम है-**आक्रोश**।

आक्रोश स्वयं की विफलता से उत्पन्न नहीं होता। आक्रोश को उत्पन्न करने वाले कारक हैं-समाज के वे कुपात्र जो अनीति, अनाचार, अत्याचार, शोषण और साम्राज्यवादी मानसिकता के कारण समाज के सीधे-सच्चे और कमजोर लोगों को अपना शिकार बनाते हैं। उन्हें तरह-तरह की यातना देते हैं। अपमानित करते हैं। उन्हें उनकी मूलभूत सुविधाओं से वंचित करने का कुत्सित प्रयास करते हैं। उन्हें साधनहीन बनाते हैं। ऐसे लोगों अर्थात् **दुष्टों को सबल और अपने को निबल मानकर असहाय और निरूपाय होते जाने का एहसास ही आक्रोश को जन्म देता है**। आक्रोश मनुष्य की आत्मा में उत्पन्न हुई एक ऐसी दुःखानुभुति या शोकानुभूति है जो मनुष्य को हर पल विचलित किये रहती है। अपने असुरक्षित और अंधकारमय भविष्य को लेकर मनुष्य का चिंतित होना स्वाभाविक है। मनुष्य की यह चिन्ताएँ हमें समाज के हर स्तर पर दिखायी देती हैं।

एक सबल व्यक्ति एक निर्बल और निरपराध व्यक्ति को पीटता है तो पिटने वाला व्यक्ति उसे सामने या उसकी पीठ पीछे लगातार गालियाँ देता है। उसे तरह-तरह की बद-दुआएँ देता है। उसे अनेकानेक प्रकार से कोसता है। धिक्कारता हैं। उसके विनाश की कामनाएँ करता है। किन्तु उस दुष्ट का विनाश करने या उसे ललकार कर पीटने में अपने को असहाय या निरूपाय पाता है। इसी स्थिति को व्यक्त करने के लिए कबीर ने कहा है-

निर्बल को न सताइये जाकी मोटी हाय,
मुई खाल की साँस सौं सार भसम ह्वै जाय।

Scanned by CamScanner

क्या निर्बल की आह को देखकर कभी दुष्टजन सुधरे हैं? उत्तर है-नहीं। उनकी दुष्टता तो निरंतर बढ़ती जाती है। तुलसीदास की मानें तो दुष्टजन दूसरों को परेशान करने या उन्हें यातना देने के लिए 'सन' की तरह अपनी खाल तक खिंचवा लेते हैं ताकि दूसरों को बाँधा जा सके। दुष्टजन 'ओले' जैसे स्वभाव के होते हैं, वे तो नष्ट होते ही हैं किन्तु नष्ट होते-होते पूरी फसल को नष्ट कर जाते हैं। ऐसे दुष्ट, समाज को सिर्फ असुरक्षा, भय, यातना, अपमान, तिरस्कार, चोट, आघात और मात देने को सदैव तत्पर रहते हैं।

वर्तमान समाज में निरंतर होती दुष्टजनों की वृद्धि समाज को जितना असहाय, असुरक्षित और कमज़ोर कर रही है, समाज में उतना ही **आक्रोश** परिलक्षित हो रहा है। कहीं पुत्र, पिता की बात न मानकर अभद्र व्यवहार कर रहा है तो कहीं भाई, भाई से कटुवचन बोलने में अपनी सारी ऊर्जा नष्ट कर रहा है। कहीं सास, बहू के लियें सिरदर्द है तो कहीं बहू, सास को अपमानित कर सुख ही नहीं, परमानंद का अनुभव कर रही है। **कुल मिलाकर हमारी हर भावना आज आक्रोश से भर रही है।** हर किसी के सीने में एक कटुवचनों की छुरी उतर रही है। अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा, थोथे दम्भ, घमंड और अहंकार का शिकार आज हमारा पूरा समाज है। निर्लज बहू को देखकर ससुर या जेठ के मन में भयानक टीस है तो बहू को ससुर या सास का व्यवहार तीर या तलवार लग रहा है। किंतु कोई किसी का बिगाड़ कुछ नहीं पा रहा है। इसलिए उसका मन झुँझला रहा है, झल्ला रहा है, बल खा रहा है। उसमें स्थायी भाव आक्रोश लगातार अपनी जड़ें जमा रहा है। इसी भुँझलाने-झल्लाने और बल खाने का ही नाम आक्रोश है। **आक्रोश एक ऐसा जोश है जिसकी परिणति रौद्रता में कभी नहीं होती है। पीड़ित की आत्मा बस बिलखती, रोती और तिलमिलाती रहती है।**

आक्रोश ऊपर से भले ही शोक जैसा लगता है। क्योंकि दुःख का समावेश दोनों में समान रूप से है। लेकिन किसी प्रेमी से विछोह या प्रिय की हानि या मृत्यु पर जो आघात पहुँचता है, उस आघात की वेदना नितांत दुःखात्मक होने के कारण शोक को उत्पन्न करती है, जो करुणा में उद्‌बोधित होती है। जबकि आक्रोश को उत्पन्न करने वाले कारक न तो अप्रत्यक्ष होते हैं और न मित्रवत्। किसी कुपात्र का जानबूझकर किया गया अप्रिय या कटु व्यवहार ही मानसिक आघात देता है और इस आघात से ही आक्रोश का जन्म होता है। दुष्ट की छल, धूर्त्तता, मक्कारी और अंहकारपूर्ण गर्वोक्तियाँ सज्जन को आक्रोश से सिक्त करती हैं। किसी सेठ या साहूकार द्वारा किसी गरीब का शोषण या उसका निरंतर आर्थिक दोहन गरीब को शोक की ओर नहीं आक्रोश की ओर ले जाता है। पुलिस द्वारा निरपराध को पीटना, फँसाना, हवालात दिखाना या उसे जेल भिजवाना, बहिन-बेटियों को छेड़ना, सुरापान कर सड़क पर खड़े होकर गालियाँ बकना या किसी अफसर या बाबू द्वारा किसी मजबूर का उत्कोचन करना, उसके काम को लापरवाही के साथ लम्बे समय तक लटकाये रखना, उसे बेवजह दुत्कारते-फटकारते रहना या उस पर अन्यायपूर्वक

Scanned by CamScanner

करारोपण कर देना, सरल कार्य को भी बिना सुविधा शुल्क लिये न करना या किसी दहेज-लालची परिवार द्वारा ससुराल पक्ष के लोगों से अनैतिक माँगे रखना, शोक को नहीं आक्रोश को जन्म देता है। **शोक में मनुष्य बार-बार आत्मप्रलाप या रुदन करता है। अपनी प्रिय वस्तु के खो जाने पर उसे पुनः प्राप्त करने की बार-बार कामना करता है।** कृष्ण के गोपियों को छोड़कर चले जाने पर पूरे ब्रज की गोपियों में उत्पन्न हुई शोक की लहर, गोपियों के मन पर एक कहर बनकर अवश्य गिरती है किन्तु उसकी वेदना प्रिय है। गोपियों के अबाध क्रन्दन में भी कृष्ण से मिलन की तड़प है, जबकि **एक प्रेमी का प्रेमिका के साथ किया गया छल और बलपूर्वक बलात्कार किसी भी स्थिति प्यार को जन्म नहीं देता। बलत्कृत प्रेमिका सोते, जागते, उठते, बैठते उसे बार-बार धिक्कारती है। उसके वचन मृदु के स्थान पर कठोर हो जाते हैं। प्रेमी के समक्ष अशक्त, असहाय और निरूपाय हुई प्रेमिका अपने मन के स्तर पर प्रेमी के सीने में खंजर घोंपती है। उसके सर्वनाश की कामना करती है। कुल मिलाकर वह शोक से नहीं, आक्रोश से भरती है,** जिसे मनुष्य के ऐसे आंतरिक क्रोध के रूप में माना जा सकता है, जो रौद्रता में तब्दील न होकर **विरोध** में तब्दील होता है।

साहित्य चूँकि मनुष्य के मनोभावों को व्यक्त करने का एक सर्वाधिक सशक्त साधन या माध्यम है, इसलिए समाज में जो कुछ घटित होता है, उस सबके लिए साहित्य में अभिव्यक्ति के द्वार खुलते हैं। आदि कवि बाल्मीकि की बहेलिये द्वारा क्रौंच-वध किये जाने पर लिखी गयी पंक्तियों में मात्र तड़पते हुए क्रौंच की पीड़ा या दुःख को ही व्यक्त नहीं करतीं। वे उस बहेलिए के कुकृत्य पर भी आक्रोश से सिक्त हैं, जिसने क्रौंच-वध किया। इस तथ्य को प्रमाण के रूप में हम इस प्रकार भी रख सकते हैं कि **कविता का जन्म आक्रोश से हुआ है। और यदि काव्य का कोई आदि रस है तो वह है-विरोध।**

काव्य की नूतन विधा 'तेवरी' दलित, शोषित, पीड़ित, अपमानित, प्रताड़ित, बलत्कृत, आहत, उत्कोचित, असहाय, निर्बल और निरूपाय मानव की उन सारी मनः स्थितियों की अभिव्यक्ति है जो क्षोभ, तिलमिलाहट, बौखलाहट, झुँझलाहट, बेचैनी, व्यग्रता, छटपटाहट, अपमान, तिरस्कार से भरी हुई है। जिनमें स्थायी भाव आक्रोश है और रस के रूप में आतताई अत्याचारी, अनाचारी, व्यभिचारी, बर्बर, निष्ठुर, अहंकारी, छलिया, मक्कार, धूर्त्त और अपस्वार्थी वर्ग के प्रति **रस के रूप में** सघन होता **विरोध** है।

तेवरी में **विरोध-रस** की निष्पत्ति किस प्रकार होती है, इसे समझने के लिये रस-आचार्य भरतमुनि के रस-सूत्र- 'विभावानुभाव व्यभिचारे संयोगादि रसनिष्पत्तिः के अनुसार विरोध-रस के विभाव, अनुभाव, संचारी भाव के संयोग से उदबुद्ध स्थायी भाव आक्रोश के द्वारा बने रस **विरोध** की भावपरक व्याख्या के साथ-साथ वैचारिक व्याख्या को समझना भी आवश्यक है-

Scanned by CamScanner

कवि के रूप में एक तेवरीकार भी कवि होने से पूर्व इस समाज का एक हिस्सा है। इस कारण वह भी सामाजिक विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं का शिकार न हुआ हो या न होता हो, ऐसा समझना भारी भूल होगी। इसलिए उसका गान (तेवरियाँ) आह, कराह, अपमान का व्याख्यान न हों, ऐसा कैसे हो सकता है। कवि के आत्म (रागात्मक-चेतना) का विस्तार जब समूचे संसार की सत्योन्मुखी संवेदना बनकर उभरता है, तभी वह कविता की प्रामणिकता की शर्त को पूरा करता है। एक तेवरीकार का आत्म उस समूचे लोक का आत्म होता है, जिसमें नैतिकता, ईमानदारी और लोकसापेक्ष मूल्यवत्ता, भोलेपन और निर्मलता के साथ वास करती है। इसी कारण एक तेवरीकार को हर अनीति इस हद तक दुःखी, खिन्न, क्षुब्ध, त्रस्त और उदास करती है कि जब तक वह उसे अभिव्यक्त नहीं कर लेता, वह बेचैन रहता है। अपनी बेचैनी को दूर करने के लिए तेवरीकार कहता है-

आदमी की हर कहानी दुःखभरी लिखनी पड़ी
बात कहनी थी अतः खोटी-खरी लिखनी पड़ी।
जब ग़ज़ल से पौंछ पाया मैं न आँसू की व्यथा
तब मुझे बेजार होकर तेवरी लिखनी पड़ी।

-दर्शन बेजार, 'देश खण्डित हो न जाए', पृ.१७

दर्शन बेजार की इन पंक्तियों में पीड़ित, दलित और शोषित वर्ग की व्यथा 'तेवरी' के सृजन का कारण इसलिए बनी है ताकि हर सामाजिक व्याधि से मुक्त हुआ जा सके। शोषक, बर्बर और आतातायी वर्ग के प्रति 'तेवरी' को एक हथियार की तरह इस्तेमाल किया जा सके। यह तभी सम्भव है जबकि एक सामाजिक के रूप में पाठक या श्रोता द्वारा तेवरीकार के इस मंतव्य तक पहुँचा जा सके।

तेवरी, सामाजिकों को किस प्रकार और कैसी रसानुभूति कराती है, इसे समझने के लिए तेवरी में अन्तर्निहित स्थायी भाव के रूप में आक्रोश तक पहुँचने की प्रक्रिया को समझना आवश्यक है जो विरोध-रस की रसानुभूति कराती है।

O

Scanned by CamScanner

विरोध रस के आलम्बन विभाव

'विरोध' इस जगत में असंतुलन, अराजकता फैलाने वाले उस वर्ग के कुकृत्यों से उत्पन्न होता है जिसके थोथे दम्भ और अहंकार के सामने ये संसार क्रन्दन और चीत्कार कर रहा है। संसार का यह शत्रुवर्ग धूर्त्त और मक्कार होने के साथ-साथ सबल भी है और अपनी सत्ता को कायम रखने में सफल भी है। तेवरी में विरोध-रस के आलंबन विभाव के रूप में इसकी पहचान इस प्रकार की जा सकती है-

(१) सूदखोर- लौकिक जगत के सीधे-सच्चे, असहाय और निर्बल प्राणियों का आर्थिक शोषण करने वाला सूदखोर-महाजन या साहूकार एक ऐसा परजीवी जन्तु है जो किसी निर्धन को एक बार ब्याज पर धन देने के बाद उस धन की वसूली अन्यायपूर्ण, छल-भरे अनैतिक तरीकों से करता है। सूदखोर के कर्ज से लदा हुआ व्यक्ति उसके शिकंजे से या तो मुक्त ही नहीं हो पाता या मुक्त होता है तो भारी हानि उठाने के बाद। विरोध-रस का आलंबन बना सूदखोर तेवरी में इस प्रकार उपस्थित है-

खेत जब-जब भी लहलहाता है / सेठ का कर्ज याद आता है।
जो भी बनता है पसीने का लहू / तोंद वालों के काम आता है।
गिरिमोहन गुरु, कबीर जिन्दा है, पृ. १७

हाथ जोड़कर महाजनों के पास खड़ा है होरीराम
ऋण की अपने मन में लेकर आस खड़ा है होरीराम।
शोषण, दमन, भूख, उत्पीड़न, बदहाली, कंगाली का
कब से ना जाने बनकर इतिहास खड़ा है होरीराम।
-सुरेश त्रस्त, कबीर जिन्दा है, पृ. ५

(२) भ्रष्ट नौकरशाह- धन के लालच और पद के मद में चूर आज की भ्रष्ट नौकरशाही मुल्क में सिर्फ तबाही ही तबाही के मंजर पेश कर रही है। जनता के लिये बनी कल्याणकारी योजनाएँ इनकी फाइलों में कैद होकर सिसकती हुई कथाएँ बनकर रह गयी हैं। फाइलों के आँकड़ों में तो खुशहाली ही खुशहाली है, लेकिन इनसे अलग

Scanned by CamScanner

पूरे मुल्क में कंगाली ही कंगाली है। जनता के खून-पसीने की गाढ़ी कमायी पर गुलछर्रे उड़ाते ये जनता के कथित सेवक जनता से सीधे मुँह बात नहीं करते। अपने को शासक मानकर ये मूँछों पर ताव देते हैं। न्याय के नाम पर सिर्फ घाव देते हैं। हर काम के बदले इनके सुविधा शुल्क (घूँस) ने इन्हें भव्य कोठियों, आलीशान कारों में जीने का आदी बना दिया है, इनकी-मौज मस्ती में भारी इजाफा किया है। बदले में देश की जनता को इन्होंने केवल उलझनों, समस्याओं भरा जीवन दिया है। विरोध-रस का आलंबन बना जनता को तबाह करता नौकरशाह तेवरी में अपनी काली करतूतों के साथ किस प्रकार मौजूद है, आइए देखिए-

बीते कल की आस हमारी मुट्ठी में / कितनी हुई उदास हमारी मुट्ठी में।
फर-फर उड़ती मेज के ऊपर बेकारी / दबी फाइलें ख़ास हमारी मुट्ठी में।

या

राहत तुमको ये कल देंगे, बातें झूठीं / बिन खाये कुछ चावल देंगे, बातें झूठीं।
सिक्कों से चलते हों जिनके नाते-रिश्ते / साथ तुम्हारे वे चल देंगे, बातें झूठी।

राजेश मेहरोत्रा, कबीर जिन्दा है, पृ. ९ व ११

दुश्मनों के वार पर मुस्काइए / इस सियासी प्यार पर मुस्काइए।
योजनाएं ढो रही हैं फाइलें / देश के उद्धार पर मुस्काइए।

अनिल अनल, इतिहास घायल है, पृ.१५

वैसे तो बिच्छुओं की तरह काटते हैं ये
अटकी पै मगर तलुबा तलक चाटते हैं ये।
मजबूरियों की कैद में देखा जो किसी को
हर बात पै कानून-नियम छाँटते हैं ये।

गिरिमोहन गुरु, कबीर ज़िन्दा है, पृ. २४

(३) भ्रष्ट पुलिस-कुछ अपवादों को छोड़कर यदि खाकी बर्दी में डकैतों, चोरों, बेईमानों, बलात्कारियों, ठगों का साक्षात्कार करना हो तो हिन्दुस्तान की पुलिस इसका जीता-जागता प्रमाण है। एक दरोगा से लेकर सिपाही तक न्याय के नाम पर आज नेता, धनवान, बलवान और अत्याचारी से गठजोड़ कर किस तरह आम आदमी को प्रताड़ित कर रहा है, यह किसी से छुपा नहीं है। गुण्डे, बलात्कारियों, चोरों, डकैतों को संरक्षण देने के कुकृत्यों में लिप्त हमारी पुलिस आज असहाय, निर्दोष और पीड़ितों को न्याय देने या दिलाने के नाम पर अत्याचार और अन्याय का पर्याय बन चुकी है। जिन थानों में बलत्कृत, अपमानित और पीड़ित अबला की रिपोर्ट दर्ज होनी चाहिए, वहाँ का आलम यह है-

गोबर को थाने से डर है / भुनियाँ आज जवान हो गयी।

-अरुण लहरी, कबीर जिंदा है, पृ.५०

आज द्रोपदी का कान्हा ही / नोच रहा है तन लिखने दो।

-दर्शन बेजार, 'एक प्रहारः लगातार', पृ०४६

Scanned by CamScanner

'सत्यमेव जयते' के नारे आज हर थाने की दीवार पर शोभित हैं। किन्तु सबसे अधिक सत्य का गला थानों में ही घौंटा जाता है। इन्सानियत के दुश्मन हैवानियत के पुजारी पुलिस वाले आज क्या नहीं कर रहे-

डालते हैं वो डकैती रात में / जो यहाँ दिन में हिफाजत कर रहे।

दर्शन बेजार, 'एक प्रहार:लगातार', पृ० २३

बन गया है एक थाना आजकल घर के करीब

खौफ से दीवार तक हिलने लगी है बन्धु अब।

अजय अंचल, 'अभी जुबाँ कटी नहीं', पृ०२२

४. नेता– पीड़ित, शोषित, दलित जनता का नेतृत्व करने वाले को नेता कहा जाता है। जनता की आजादी के लिए असीम और कष्टकारी संघर्ष करने वाले क्रांतिकारी सुभाषचन्द्र बोस को इस देश ने सर्वप्रथम सम्मानपूर्वक नेताजी सम्बोधन से अंलकृत किया था। लेकिन दुर्भाग्य देखिए कि आज गुण्डा, तस्कर, डकैत, चोर, भ्रष्टाचारी देश और जनता के साथ छल और विश्वासघात करने वाले अधिकांश कुकर्मी 'नेताजी' हैं, जिन्होंने देश को जातिवाद, साम्प्रदायिकता और प्रान्तवाद की आग में झौंक दिया है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के नाम को कलंकित करने वाले नेता आज एक शातिर अपराधी की भूमिका में हैं किन्तु दुर्भाग्य से ऐसे लोग देश के मेयर, जिला परिषद् अध्यक्ष, विधायक, सांसद, मंत्री, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री के रूप में 'माननीय' बने हुए हैं। इन माननीय नेताओं की काली करतूतें भी कोई कम नहीं। ये बड़े-बड़े घोटालों के जनक हैं। इनके संरक्षण में जालसाजी के अड्डे, चकलाघर, देशी शराब बनाने की अवैध भट्टियाँ, जाली नोट छापने के कारखाने चल रहे हैं। ये बोफोर्स तोपों, पनडुब्बियों, सीमेंट, खादी, ताबूत, चारा, यूरिया के सौदों में घोटाले कर रहे हैं और उसके कमीशन को निगल रहे हैं। सुरक्षा गार्डों की रायफलों और अपने अवैध शस्त्रों से लैस होकर इनके काफिले जिधर से भी गुजरते हैं, आईजी, डीआईजी, एसपी, एसएसपी इन्हें शीश झुकाते हैं। इनकी खातिर गुलामों की मुद्रा में अफसरों के सैल्यूट खट-खट बजते पुलिस के बूट इस बात की गवाही देते हैं कि ये लुटेरे भले ही अँधेरे के पोषक हैं, लेकिन इन्होंने पूरी की पूरी सरकारी मशीनरी को अपने पक्ष में इस्तेमाल कर लिया है। पूरे के पूरे देश को 'नेताजी' बनकर हलाल कर लिया है। पंद्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी को तिरंगा लहराते, वंदे मातरम् के नारे लगाते नहीं अघाते ये लोग खादी को ओट में जनता की आजादी के सबसे बड़े दुश्मन बने हुए हैं। इनके इरादे आजादी के खून से सने हुए हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हिमायतदार ये सारे के सारे 'नेताजी' हमारी आजादी फिर विदेशी 'दादाजी' की बपौती बनाने पर तुले हैं। कमाल देखिए इतने कुकृत्यों के बावजूद ये दूध के धुले हैं। जनता के मन में एक बताशे-से घुले हैं। आज सोने के कलश में भरा विष का नाम ही 'नेताजी' है। इसलिए ये कहीं 'बापजी' हैं तो कहीं 'संतजी' हैं। कहीं 'काजी' हैं तो कहीं 'महन्तजी' हैं। कहीं

Scanned by CamScanner

'इमाम' बन जनता को गुमराह कर रहे हैं तो कहीं 'साधु या साध्वी' बनकर जहर उगल रहे हैं। इनके षड्यंत्रों के खूबसूरत चक्रव्यूह भले ही जनता की रूह को बेचैन किये हों लेकिन वह इन भ्रष्ट नेताओं का कुछ भी बिगाड़ नहीं पा रही है।

चाणक्य की नीतियों को अमलीजामा पहनाने वाले हमारे ये नेता, कराहती जनता के भीतर पनपते आक्रोश को दबाने के लिये अश्लीलता फैलाने, समाज को व्यभिचार में डुबाने के लिये प्रिण्ट और इलैक्ट्रोनिक मीडिया पर भी अपनी पकड़ मजबूत बनाने में जुटे हैं। भले ही ये दोनों मीडिया आज अपने को सत्य और जनता का पुजारी बनने का ढोंग रचें, लेकिन सच्चाई यह है कि जनता इनके अश्लीलता, अंधविश्वास और कथित धार्मिक इन्द्रजाल के मोहपाश में जकड़ी हुई है। यह सब किसी और के नहीं इन्हीं नेताओं के इशारे पर हो रहा है। सिनेमा हाल में पिक्चर के साथ दिखाये जाने वाले ब्लूफिल्मों के टुकड़े समाज में बढ़ती बलात्कार की घटनाओं के उतने ही जिम्मेदार हैं, जितने साइबर कैफे। किन्तु नेताजी को इस विकृत होते सामाजिक समीकरण को बदलने की चिन्ता नहीं है। उसकी चिन्ता तो गद्दी और अपनी सत्ता को सुरक्षित रखने की है-

राजा जी को डर है उनकी पड़े न खतरे में गद्दी
इसीलिये वे बढ़ा रहे हैं-हाला, प्याला, मधुशाला।

रमेशराज, 'मधु-सा ला' (अप्रकाशित)

एक सजग तेवरीकार के लिये ये सारी स्थितियाँ ही असह्य, वेदनादायी, क्षुब्धकारी और आक्रोश से सिक्त करने वाली हैं। जहाँ जनता को सुविधा और खुशहाली प्रदान करने के नाम पर पुलिस के ठोकर मारते बूट और दुनाली हैं, वहाँ तेवरीकार की आत्मा (रागात्मक चेतना) क्रन्दन न करे, आक्रोश से न भरे और यह स्थिति तेवरी के रूप में रचनाकर्म में न उतरे, ऐसा हो ही नहीं सकता।

स्थायी भाव आक्रोश से सिक्त विरोध-रस का आलंबन बनने वाले नेताओं के विभिन्न रूप तेवरी में इस प्रकार देखे जा सकते हैं-

धरम को बेचने वाले वतन भी बेच डालेंगे,
सत्य के सूर्य की चुन-चुन किरन भी बेच डालेंगे।

-सुरेश त्रस्त, 'इतिहास घायल है', पृ.३०

आप अपनी हकीकत छुपाएँगे कब तक,
नकाबों में सम्मान पाएँगे कब तक।
आप सोएँगे संसद में कितने दिनों तक,
हम किवाड़ों पै दस्तक लगाएँगे कब तक?

विजयपाल सिंह, 'इतिहास घायल है', पृ.२३

अब सजाते हैं इसे तस्कर, डकैत देखिए,
राजनीति खून का शृंगार होती जा रही।
लूटकर खाते हैं अब वे देश की हर योजना,

Scanned by CamScanner

उनकी खातिर हर प्रगति आहार होती जा रही।

-अरुण लहरी, 'कबीर जिन्दा है', पृ.४८

(५) साम्प्रदायिक तत्व- धर्म पूरे विश्व का एक है। हम सब हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई होने से पहले इन्सान हैं। पूरे विश्व के इंसानों का हँसने-रोने, जन्म लेने, मरने का तरीका एक है। हम सबकी आँखें, पाँव, नाखून, मुँह, कान, बाल एक समान हैं। हम सबके स्वेद, कंपन, विहँसन, क्रंदन, थिरकन में एक जैसे अनुभाव हैं। भूख, प्यास और नींद हमें समान प्रकार से लगती है। फिर भेद कहाँ है? हमारे समान मानवीय रूप-स्वरूप के बीच छेद कहाँ है?

प्रकृति फूलों को खिलाने, चाँदनी बिखरने, धूप लुटाने, जल बरसाने में जब मनुष्य से मनुष्य के बीच कोई भेद नहीं करती तो मनुष्य इतना पागल और स्वार्थी क्यों है? प्रकृति और मनुष्य के इतने साम्य या एकता के बावजूद अनेकता की दरारों को चौड़ी कर खाइयाँ बनाने या उन्हें और बढ़ाने में मनुष्य को सुख की प्रतीति क्यों होती है। यह मनुष्य का छद्म और बेबुनियाद अहंकार ही है कि उसने रंगभेद, जाति-भेद, नस्ल-भेद के आधार पर वार और उपचार के घिनौने तरीके ईजाद कर लिये हैं। अपने सोचों में ऐसे जल्लाद भर लिये है जो कि एक-दूसरे के खून के प्यासे हैं।

धर्म के नाम पर सम्प्रदायों के अधर्म का मर्म ही इन्हें सच्चा और न्यायपरक लगता है। सम्प्रदाय यदि सच्चे धर्म का अल्पांश भी लेकर चले तो सूर्यांश हो जाता है। किंतु उजाले के नाम पर एक-दूसरे की ज़िंदगी में अँधेरा भरने वाले सम्प्रदाय, परोक्ष या अपरोक्ष आज 'हाय' भर रहे हैं। धर्म का नाम लेकर एक-दूसरे की गर्दन कतर रहे हैं। निर्दोशों, निर्बलों के घर उजाड़ रहे हैं। अबोध बच्चों, बूढ़ों और अबलाओं के पेट में चाकू उतार रहे हैं।

इनके अपने-अपने अलग-अलग भगवान हैं। इसलिए इन्हें लगता है कि ये ही श्रेष्ठ हैं, महान हैं। एक-दूसरे के सम्प्रदाय को निकृष्ट या नीच समझने वाले ये सम्प्रदाय, धर्म के नाम पर लाशों का घिनौना व्यवसाय करते हैं। मनुष्य जाति का समूल नाश करने में ये दूसरे के क्या, अपने ही सम्प्रदाय के भगवान से नहीं डरते हैं। ये जहाँ भी अपने कुत्सित इरादों को लेकर उतरते हैं वहाँ चीत्कार और हाहाकार के मंजर पेश करते हैं।

ऐसे साम्प्रदायिक उन्माद के बीच कवि के रूप में **एक तेवरीकार का मन 'आक्रोश' को सघन करता है और यह आक्रोश उसके रचना-कर्म में विरोध -रस को परिपक्व बनाता है।** और धर्म के नकाब में छुपे हुए अधर्मी की पहचान इस प्रकार कराता है-

कलियुगी भगवान, ये भग के पुजारी,
भोग को अब योग बतलाने लगे हैं।

-गिरिमोहन गुरु, 'कबीर ज़िंदा है' पृ-२०

उसका मजहब खून-खराबा,

Scanned by CamScanner

वह चाकू में सिद्ध हस्त है।

-सुरेश त्रस्त, कबीर ज़िंदा है', पृ-५५

धर्मग्रंथों पर लगाकर खून के धब्बे,
लोग पण्डित हो रहे हैं एकता के नाम पर।

-गिरीश गौरव,'इतिहास घायल है', पृ-३४

वे क्या जानें जनहित यारो/ नरसंहार धर्म है उनका।
लड़वाते हैं हिंदू-मुस्लिम / रक्ताहार धर्म है उनका।

अरुण लहरी, 'अभी जुबाँ कटी नहीं', पृ-१०

बेच दी जिन शातिरों ने लाश तक ईमान की,
ढूँढ़ते हैं आप उनमें शक्ल क्यों इंसान की।
लूटना मजहब बना हो जिन लुटेरों के लिए,
ओढ़ते हैं वे यकीनन सूरतें भगवान की।

-दर्शन बेजार,'एक प्रहार:लगातार', पृ.४६

Scanned by CamScanner

विरोध रस के अन्य आलंबन

'विरोध रस' स्थायी भाव 'आक्रोश' से उत्पन्न होता है और इस स्थायी भाव आक्रोश को उद्दीप्त करने वाले कारकों में सूदखोर, भ्रष्ट नौकरशाह, भ्रष्ट पुलिस, नेता, साम्प्रदायिक तत्त्वों के अतिरिक्त ऐसे अनेक कुपात्र हैं जो समाज की लाज के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। एय्याशी इनकी नसों में खून की तरह दौड़ रही हैं। इनके भीतर पवित्र रिश्तों की कहानी भी हनीमून की तरह दौड़ रही है। भोग-विलासी स्वभाव के ये लोग कलियों को मसलते हैं। इनके सोच बहिन, बेटियों, माँ, भान्जी भतीजी को लेकर वासना में फिसलते हैं। कोठे के भोग-विलास लेकर अबला, अबोध बालिकाओं के साथ ये बलात्कार करते हैं।

दुष्ट लोंगो का एक अन्य वर्ग ऐसा है जो जहर देकर आदमियों को ट्रेनों या बसों में लूटता है। जेबें कतरता है। अटैचियाँ उड़ाता है। लोगों को मूर्ख बनाता है। अपने साधुई रूप में धन-बृद्धि का लालच देता है और ठगकर चला जाता है।

धन के लोभ या लालच का संक्रामक रोग कुछ समय को सुविधा या भोग का योग जरूर बनाता है, लेकिन इस लालची सभ्यता के कारण जाने कितने लोगों की खुशियों का चीरहरण होता है, इसे जानने की फुरसत किसे है। धन के लालच में डॉक्टर मरीज की ज़िन्दगी से खिलवाड़ कर रहा है। सास, गरीब-बाप की बेटी, बहू को कुलटा कुलक्षिणी बता रही है। उसे घर से बाहर निकाल रही है। उसके माँ-बाप की इज्जत उछाल रही है।

जमीन-जायदाद के झगड़े आज आम हैं। थाने या अदालत में भाई, चाचा, ताऊ, पिता पर मारपीट के इल्जाम हैं। धन जुटाने की तीव्र होड़ आज एक को सम्पन्न तो एक को निचोड़ रही है। समाज या परिवार के रिश्ते-नातों को तोड़ रही है। धन पाने के लिये कोई नकली नोट बना रहा है, तो कोई धनिये में लीद मिला रहा है। कहीं नकली दवा का कारोबार है तो कहीं जाली नोटों और स्टाम्पों के बलबूते आती हुई रोशनी के पीछे ठगई, शोषण, डकैती के माल का कमाल है। यह एक मकड़ी का ऐसा बुना हुआ जाल है जिसके भीतर शेयर बाजार जैसी उछाल है। कवि के रूप में एक तेवरीकार के लिये ऐसा सारा वातावरण मक्कारी, छल, फरेब, ठगई से बनता है, जो खुशियों के बजाय दुःख को जनता है। तेवरीकार ऐसे वातावरण को लेकर क्षुब्ध होता

Scanned by CamScanner

है और अपने मन में ऐसे आक्रोश को सँजोता है जो तेवरी में विरोध-रस का परिपाक बनता है-

खुदकुशी कर ली हमारे प्यार ने
इस लिये हम आपसी तकरार ने।

दर्शन बेजार, 'देश खण्डित होन जाए', पृ-५९

कुलटा और कलंकिन, निर्लज बता-बता कर राख किया
हमने हर दिन अबलाओं को जला-जला कर राख किया।
भूखे पेट रखा बिन पानी सोने जैसी काया को
और इस तरह धन लोभी ने उसे जलाकर राख किया।

दर्शन बेजार, 'देश खण्डित हो न जाए', पृ०५८

मयकदों में पड़े हैं गाँव के मालिक
हो गया बरबाद हर घरबार झूठों से।

कृष्णावतार करुण, 'कबीर जिन्दा है', पृ०४२

Scanned by CamScanner

विरोध रस के उद्दीपन विभाव

आलंबन विभाव की चेष्टाएँ, स्वभावगत हरकतें, उसकी शारीरिक संरचना, कार्य करने के तरीके आदि के साथ-साथ वहाँ आसपास का वातावरण आदि उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आते हैं।

इस संदर्भ में यदि तेवरी में विरोध-रस के उद्दीपन विभावों को विश्लेषित करें तो इसके अंतर्गत खलनायकों के वे सारे तरीके आ जाते हैं, जिनके माध्यम से वे समाज का उत्कोचन, दोहन, उत्पीड़न व शोषण करते हैं।

दुष्ट लोगों का स्वभाव कहीं बिच्छू की तरह डंक मारता महसूस होता है तो कहीं साँप की तरह फुंकारता तो कहीं किसी का जोंक के समान खून चूसता तो कहीं अपने ही कुत्ते के समान काटता हुआ-

हमीं ने आपको पाला पसीने की कमायी से
हमारे आप कुत्ते थे, हमीं को काट खाया है।

-डॉ. देवराज,'कबीर ज़िंदा है', पृ.-२५

कुर्सियों पै पल रहे हैं नाग प्यारे
वक्त की आवाज सुन तू जाग प्यारे।

-डॉ. एन.सिंह,'कबीर ज़िंदा है', पृ.-४०

वैसे तो बिच्छुओं की तरह काटते हैं ये
अटकी पै मगर तलवा तलक चाटते हैं ये।

-गिरिमोहन गुरु,'कबीर ज़िंदा है' पृ.-२४

दुष्टजनों की काली करतूतों के कारण आदमी बेचैन हो उठता है। उसकी रातों की नींद के मधुर सपने चकनाचूर हो जाते हैं। लेकिन दुष्ट लोग सज्जन की इस पीड़ा से अनभिज्ञ खर्राटे मारकर बेफिक्र सोते हैं-

नींदों में था उस मजूर के एक सपना
लालाजी के खर्राटों ने लूट लिया।

अरुण लहरी,'कबीर ज़िंदा है', पृ.-४५

विरोध-रस के आश्रय को नेता के ख़ादी के वस्त्र भी आदमी की हत्या करने वाले खूनी लिबास नजर आते हैं-

Scanned by CamScanner

खादी आदमखोर है लोगो
हर टोपी अब चोर है लोगो।

-अरुण लहरी, 'अभी जुबाँ कटी नहीं', पृ.-१२

कायिक व वाचिक अनुभावों के बीच जनसेवा और देशभक्ति का ढोंग रचने वाले नेता की करतूतें देखिए-

जब कोई थैली पाते हैं जनसेवक जी
कितने गदगद हो जातें हैं जनसेवक जी।
भारत में जन-जन को हिंदी अपनानी है
अंग्रेजी में समझाते हैं जनसेवक जी।

-रमेशराज,'इतिहास घायल है', पृ.-४४

एक तेवरीकार को सामाजिक परंपराओं, दायित्व, परोपकार का वह सारा का सारा ढाँचा बिखरता नजर आता है जिसमें हमारे सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्य उजाले की तरह ओजस् थे। उसे तो सनातन पात्रों का व्यवहार आज व्यभिचार और बलात्कार का एक घिनौना बिंब प्रस्तुत करता हुआ सभ्यता के बदबूदार हिस्से की तरह उद्दीप्त करता है-

राम को अब रावन लिखने दो
ऐसा संबोधन लिखने दो।
आज द्रौपदी का कान्हा ही
नोच रहा है तन लिखने दो।
बुरी निगाहें डाल रहा है
सीता पर लक्ष्मन लिखने दो।

-दर्शन बेजार,'एक प्रहार:लगातार', पृ.-६२

सम्प्रदाय और जातिवाद के समीकरण पर टिकी इस घिनौनी व्यवस्था के नायक भले ही 'वंदे मातरम्' और 'जन-गण-मन' के गायक हैं, लेकिन जनता इनकी करतूतों को पहचान रही है और यह मान रही है-

क़त्ल कर मुंसिफ कहे जाते हैं कातिल आजकल,
शैतान में बेहद अक़्ल है यार अपने मुल्क में।

-अजय अंचल, अभी जुबां कटी नहीं, पृ.२१

चमन उजाड़ रहे हैं माली / सिसक रहा गुलजार यहाँ है।

-सुरेश त्रस्त, अभी जुबां कटी नहीं, पृ. ३५

लोकतंत्र का चौथा स्तंभ प्रिंट व इलैक्ट्रोनिक मीडिया को ऐसे शोषक, त्रासद, उत्पीड़क वातावरण में अपने चरण उस उजाले की ओर बढ़ाने चाहिए, जिसमें हर ग़लत चीज़ साफ-साफ दिखायी दे। त्रासदियों से उबरने का कोई हल दिखायी दे। लेकिन सत्य के उद्घोषक ये सरस्वती पुत्र आज विरोध-रस का आलंबन बन चुके हैं और एक् अराष्ट्रीय व अराजक भूमिका के साथ उद्दीप्त कर रहे हैं-

Scanned by CamScanner

पुरस्कार हित बिकी क़लम, अब क्या होगा?
भाटों की है जेब गरम, अब क्या होगा?
प्रेमचंद, वंकिम, कबीर के बेटों ने
बेच दिया ईमान-धरम, अब क्या होगा?

-दर्शन बेज़ार, एक प्रहार: लगातार, पृ. ३९

यही नहीं समूचे विश्व का मंगल चाहने वाला साहित्यकार आज दरबार-संस्कृति का पोषक व उद्घोषक बनता जा रहा है। उसे 'अभिनंदन और वंदन' का संक्रामक रोग लग गया है। वह हमारी उद्दीपन क्रिया में कुछ इस तरह जग गया है-

तथाकथित लोलुप साहित्य-सेवियों को,
अभिनंदन का पला भरम, अब क्या होगा?
यूँ कैसे साहित्य बने दर्पण युग का,
बने मात्र दरबारी हम, अब क्या होगा?

-दर्शन बेज़ार, एक प्रहार:लगातार, पृ. ३९

प्रकृति का अबाध दोहन हमसे हरे-भरे दृश्य ही नहीं छीन रहा है, हमारे बीच से उन खुशियों को बीन रहा है, जिसकी स्वस्थ वायु में हम चैन की साँस ले सकें। कारखाने भयंकर प्रदूषण छोड़कर हमें 'ग्लोबल वार्मिंग' की त्रासदी की ओर धकेल रहे हैं। भौतिक सुख की अंधी होड़ में जुटा परिवहन हमें धुँआ पीने को मजबूर कर रहा है। हमारी खुशी से हमें दूर कर रहा है। सड़कों के नाम पर पूरे परिवेश में सीमेंट, कंकरीट और तारकोल का जंगल उग आया है। फलत: जलस्तर नीचे जा रहा है। प्रकृति के तरह-तरह के प्रकोपों से सामना करना पड़ रहा है। पुष्पमंडित, जलप्रपातों से भरी, मीठे जल वाली प्रकृति आज हमें इस प्रकार उद्दीप्त कर रही है-

है विषैला आजकल वातावरण,
पी गया कितना गरल वातावरण।

-गिरीश गौरव, इतिहास घायल है, पृ.३६

तेवरियां

जलाल अहमद खां तनवीर

तेरी साजिश से अपना वतन बंट गया,
लाश नंगी पड़ी है, कफन बंट गया।
खून के अश्रु रोती है बुलबुल यहां
धर्म के नाम पर निज चमन बंट गया।
बंट नहीं पायेंगी खुशबुएं प्यार की,
लाख कहने को सहने-चमन बंट गया।
किसने नफरत की दीवार कर दी खड़ी,
घर के आंगन का पल में सहन बंट गया।
चांद-तारे कहां जायेंगे किस तरफ
यदि जमीं की तरह ही गगन बंट गया।
-द्वारापोस्टमास्टर,माजनपुर,बाराबंकी

केशव शरण

परिन्दे सारे बेघर हो गये हैं
शजर पर इतने बंदर हो गये हैं।
समा जायें कई इक देश जिनमें
दिलों में खूब अंतर हो गये हैं।
अभी भी शांति सपना है धरा पर
निछावर सब कबूतर हो गये हैं।
सबेरे को मजे से शाम लिख तू
तेरे अनुसार अक्षर हो गये हैं।
समस्यायें बनीं नासूर ऐसा
कि अब बेकार नश्तर हो गये हैं।
चमन में किसने अपना पांव रक्खा
अचानक फूल पत्थर हो गये हैं।
-एस-२/५६४,सिकरौल,वाराणसी-२

विद्या शंकर विद्यार्थी

क्या मढ़ते तुम दोष रहोगे
हम मढ़ें तो खामोश रहोगे?
पी जाते हो गागर सागर
हम पीए तो रोश रहोगे।
बनना केवल जलद दिखावा
कब दो[illegible] जलकोश रहोगे
जैसे बवण्डर हो तुम उठाते
आंधी आये तो पड़ोस रहोगे।
-जे-१४९, नयी कालोनी, चुर्क,
सोनभद्र-२३१२०६

खालिद हुसैन सिद्दीकी

ऐसा कर तू काम भतीजे
हो जा बस बदनाम भतीजे।
सबसे बड़ा माफिया मार
हो जायेगा नाम भतीजे।
दादागीरी देख के तेरी
अफसर करें सलाम भतीजे।
बिना काम की ठेकेदारी
दौलत मिले तमाम भतीजे।
राह हजारों खुल जायेंगी
कोई-सा दल थाम भतीजे।
देश लूटना है मंत्री बन
फिर करना आराम भतीजे।
-ए-५८८,संचार विहार, मनकापुर
गौंडा-उत्तरप्रदेश-२७१३०८

२.मुनीर बख्श आलम

हम उसका दर ठिकाना पता पूछते चलें
कुछ तो सुराग देगी हवा पूछते चलें।
आयी है बज्मे-नाज से वह जश्न मनाकर
लायी है क्या यह बादे-सबा पूछते चलें ?
मुंसिफ की मुद्दई से बहुत रब्त-जब्त है
फिर हमको क्या मिलेगी सजा पूछते चलें।
जब आ ही गये गम हैं तबीबों के शहर में
इस दर्द दिल की हम भी दवा पूछते चलें।
इस शहरे-मोहब्बत की नफासत की जमीं से
वह चीखने की कैसी सदा पूछते चलें।
जुल्मोसितम औ' रंजोअलम का था बहुत जोर
मर्कज की इन दिनों क्या फजा पूछते चलें।
पहले तो रहा करते थे दो जिस्म एक जान
क्यों लोग हो रहे हैं जुदा पूछते चलें।
दुश्वारियों में अपनी गुजरती है सुब्हो शाम

Scanned by CamScanner

कब तक रुकेगा जोरो-जफा पूछते चलें।
कब खत्म होगा फाकाकशी का ये नया दौर
कब होगी हर बदन पे रिदा पूछते चलें।
वह अपनी नजर फेर के बेरुख है, खफा है
क्या हो गयी आलम से खता पूछते चलें।

-जे-१४९नयी कालौनी चुर्क सोनभद्र-उ.प्र.

रसूल अहमद सागर

आदमी कब आह्लादित है।
वासनाओं से पराजित है।
एकता के नाम की क्षमता
जातिवादों में विभाजित है।
नीतियां केवल नहीं दोषी
यज्ञशाला तक विवादित है।
आस्था अब धर्म में है कम
सभ्यता धन से प्रभावित है।
यदि हवाओं पर चलेंगे आप
आपका गिरना सुनिश्चित है।
तुम अकेले ही नही सागर
आज सारा विश्व भ्रमित है

-रामपुरा (जालौन) उत्तर प्रदेश

अक्षय गोजा

इन्सान की उपलब्धियाँ यूँ कम नहीं,
ये भी कि संहारक बना खुद यम नहीं।
उन दूर नक्षत्रों में जाकर खुश हुए
पर पास गंदी बस्तियों का गम नहीं।
यूँ दायरा समृद्धि का बढ़ ही रहा
पर भूख होती है कभी यहां कम नहीं।
दुनिया बड़ी अब हो रही छोटी बहुत
लेकिन हदें भीतर की होतीं कम नहीं।
आगे सितारों के जहां तो खोजते
कैसे स्वयं को खोज लें ये दम नहीं।

-चांदपोल गेट के पास, जोधपुर-३४२००१

टीकम चन्दर ढोडरिया

रीते घट-सी है दुखियारी
बाहर बैठी वृद्धा नारी।
जीवन-पथ के कंटक सह-सह
जर्जर हुई अब देह सारी।
सबला थी तो सब अपने थे
अब सबको लगती है भारी।
वय के इस अंतिम पड़ाव में
सूना जीवन लगता भारी।

-छबडा,जिला-बारां (राजस्थान)

दोहे

-जितेंद्र 'जौहर'

मिली समूचे शहर को, दंगों की सौगात।
खूं से लथपथ दिन मिले, आंसू-भीगी रात।।
चाकू, खंजर, गोलियां, पत्थर सबके पास।
हरे रंग के होंठ पर, लाल-लाल-सी प्यास।।
चप्पे-चप्पे पर पुलिस, हथियारों से लैस।
'सन्नाटा' लिखने लगी, पल में आंसू-गैस।।
मुस्लिम ने 'अल्ला' कहा, हिन्दू बोला 'राम'।
बस इतनी-सी बात पे, बातें बनीं तमाम।।
नहीं किसी से कम कोई, सब के सब इक्कीस।
हमने करके देख ली, दंगों की तफ्तीश।।
दंगों की कटु पटकथा, लिखता है क्यों-कौन?
मालूम है सबको मगर, सब साधे हैं मौन।।
ना 'वो' मस्जिद का हुआ, ना 'ये' मंदिर-भक्त।
दोनों को बस चाहिए, इक-दूजे का रक्त।।
दंगे में मारे गए, हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख।
केसरिया बोला, सखे! केवल हिन्दू लिक्ख।।
दंगों में जलते नहीं, सिर्फ दुकान-मकान।
इन दोनों के दरम्यां, जलता हिन्दुस्तान।।
धूँ-धूँ जलती बस्तियां, दंगाई आजाद।
यह सुनकर खुश हो गए, सत्ता के सय्याद।।
राजनीति औ' आचरण, पारस्परिक विलोम।
जैसे हिजड़ों के लिए, होता है कण्डोम।।

संपर्क: एन-३३/६, रेणुसागर, सोनभद्र (उ.प्र.) २३१२१८

कृपया अपनी प्रतिक्रिया से अवश्य अवगत करायें।

Scanned by CamScanner

तेवरियाँ

राजकुमार मिश्र

कैसा आज विधान देश में,
रोज लुटे इन्सान देश में।
आम आदमी हुआ आजकल
दुख-दर्दों की खान देश में।
चाहे जिस दल का हो नेता
बेच रहा ईमान देश में।
बाँट रहे हैं आज प्यार को
गीता और कुरान देश में।
हर कोई लड़ने को आतुर
लेकर तीर-कमान देश में।
राजकुमार प्यार का भूखा
इसीलिये हैरान देश में।

(२)

फूल बने अंगार देश की धरती पर
फैला अत्याचार देश की धरती पर।
बिकते नहीं खिलौने अब बाज़ारों में
बिकते हैं हथियार देश की धरती पर।
जिधर देखिए उधर मिलावट होती है
धोखा हर व्यापार देश की धरती पर।
पहले लूटा हमको चोर-उच्चकों ने
लूटे थानेदार देश की धरती पर।
टुकड़े अब भारत के यारो और न हों
कहता राजकुमार देश की धरती पर।

-ग्राम व पोस्ट- सराय हरनारायण, अलीगढ़

अशोक गुलशन

सूखे को तो झेल रहा हूं आनी आगे बाढ़ है,
मेरे सर पर पेड़ गिरा है गिरना अभी पहाड़ है।
डेहरी में भी धान नहीं है कपड़े-लत्ते ठीक नहीं,
टूटी हुयी वड़ेरी पर भी छप्पर लगे उजाड़ है।
बेटी की शादी करनी है मां को लेकिन टीबी. है,
सीधे-सादे जीवन में भी कितना झाड़-झँझाड़ है।
मेरे घर से सदा गरीबी भागी-भागी फिरती थी,
गुलशन सूखा, आज गरीबी लगती जैसे ताड़ है।

-उत्तरी कानूनगोपुरा, बहराइच (उ.प्र.)

-डॉ. बी.पी. दुवे

अव तो आपस में घात रहने दो
खुशनुमा कायनात रहने दो।
आदमी सिर्फ आदमी यारो
वर्ग, मजहब व जात रहने दो।
अंधेरे कैसे मन को भाएंगे
चांद-तारों की रात रहने दो।
होगी हलचल सियासी हलकों में
शजर में डाल-पात रहने दो।

२.

कब नहीं ऐसा हुआ बाजार में,
आज जैसा आ गया अखबार में।
आपको उत्तर सभा में दे दिया,
पूछने आये हो तुम बेकार में।
पहले खुलकर दे रहे थे गालियाँ
अब जो शामिल हो गये सरकार में।
पुलिस की नजरों में जो खटके सदा
अब तो जा बैठे हैं वे दरबार में।

-निकट होटल संगम, ५ सिविल लाइंस, सागर

आजाद कानपुरी

हकीकत के अल्फाज गढ़ने पड़ेंगे,
हमें आईने अब बदलने पड़ेंगे।
बहुत लुट चुकी है शराफत की दुनिया
हमें अपने तेवर बदलने पड़ेंगे।
अगर सुन सको तो सुनो दिल की बातें
गुनाहों भरे हाथ मलने पड़ेंगे।
तिरा नाम मेरी जुबां पर लिखा है
मिरे दायरे कुछ समझने पड़ेंगे।
हमें तो खुशी है वो चंदन से लिपटें
मगर विष भरे फन कुचलने पड़ेंगे।

-एल.आई.जी.-११५४,आवास विकास-३, कानपुर

वृन्दावन राय 'सरल'

उसे ढूंढ़ो मिलेगा वो सियासत की हवेली में
किया है छेद जिसने देश की उल्फत की कश्ती में।
कहीं पर हम कहीं पर तुम, कहीं दोनों लगे मुजरिम

Scanned by CamScanner

अभी तक जो हुए दंगे हमारी अपनी बस्ती में।
कहीं रोती है सच्चाई, कहीं जख्मी वफाएं हैं
यही मंजर वतन का है तुम्हारी सरपरस्ती में।
ज़मीं हूं, आसमां हूं मैं, हवा हूं, मैं समन्दर हूं
बताओ मैं रहूं कैसे किसी की सरपरस्ती में।
बचा लाये भंवर से जो किनारों पर 'सरल' कश्ती
नहीं दिखता यहां ऐसा कोई इंसान बस्ती में।

-पोद्दार कालोनी(राजभवन) सागर-४७०००२

जय चक्रवर्ती

आप बड़े दिलदार आपके क्या कहने
आप सभी के यार आपके क्या कहने।
सेवक, स्वामी, मालिक, मौला आप सभी
क्या-क्या हैं किरदार आपके क्या कहने।
निर्दलीय हैं आप मंत्रिपद पक्का है
कोई हो सरकार आपके क्या कहने।
बाप विधायक, मां प्रधान, सरपंच चचा
मौसा थानेदार आपके क्या कहने।
क़त्ल, डकैती, दंगा चाहे जो करिए
मंत्री रिश्तेदार आपके क्या कहने।

-एम-१/१४९,जवाहर विहार, रायबरेली-१०

रमेशचंद्र शर्मा 'चंद्र'

रात गयी तो बात नयी
लाया दिन सौगात नयी।
हाल पूछते मुसकाकर
होनी है अब घात नयी।
खेल अधूरा क्यों छोड़ें
जीत नयी है, मात नयी।
दृष्टि फेर ली है उसने
देखें क्या हो बात नयी।
रात अंधेरा औ' कालिख
दर्दों की बारात नयी।
दूर देश से आयी है
अम्ल भरी बरसात नयी।

-डी-४ उदय हाउसिंग सोसा.
वैजलपुर,अहमदाबाद

मधुर नज्मी

घाव दिल का हरा हो गया,
दर्द का आईना हो गया।
जब दरख्तों पै फल आ गये
पत्थरों का भला हो गया।
एक मुजरिम है मुंसिफनुमा
छोड़िए फैसला हो गया।
सब्ज दिखता यकीनन मगर
यह तना खोखला हो गया।
अर्थ के बिम्ब धुंधला गये
मातृभाषा को क्या हो गया।

-गोहना मुहम्मदाबाद, जिला-मऊ-२७५१०१,उ.प्र.

पं. गिरिमोहन गुरु

यों अर्वाचीन हो गया
आदमी मशीन हो गया।
गांजा था भांग था कभी
अब तो कोकीन हो गया।
स्वप्निल-छल कंकरीट का
जगते ही टीन हो गया।
जन्मा था सिंधु में मगर
डाबर का मीन हो गया।
रहकर अब साथ आपके
'गुरु' भी ग़मगीन हो गया।

-सेवाश्रम, गृह निर्माण कालोनी, होशंगाबाद,म.प्र.

मदनमोहन उपेंद्र

रेत की दीवार-से रिश्ते
वक्त के हालात हैं चुभते।
आज ये लटके हुए चेहरे
मुंडेरों पर धूप में सिकते।
पत्थरों पर कांच के पैबंद
घाव भीगी रुई-से रिसते।
यथावत है दर्द से दामन
शराफत में स्वयं ही पिसते।
जहर बुझे तीर पत्थर पर
आप किसके वास्ते घिसते।

-ए-१० शांति (संजय)नगर, मथुरा (उ.प्र'

Scanned by CamScanner

(कहानी)

जड़ें

जसवंत सिंह विरदी

वह एक जबरदस्त बर्फीला तूफान था। उसकी गति भी बहुत तेज थी। मगर वह केवल कुछ क्षणों में ही शहर भर का विनाश कर गया। उस तूफान से कद्दावर वृक्ष थिरकते-नाचते हुये हंसते रहे थे, मगर बेचारा गुलमोहर, मोटे शरीर और बुलंद आकार का गुलमोहर गिरकर भूमि पर सपाट-सा फैल गया था। उसकी जड़ें उखड़ गई थीं, जड़ें नग्न हो गई थीं।

हर तरफ तूफान था इसलिये गुलमोहर का आर्तनाद किसी ने नहीं सुना था। गुलमोहर तो सोच भी नहीं सकता था कि उसकी इस प्रकार की दुर्दशा भी हो सकती है। तूफान चीत्कार करता आया था जैसे कोई हाथी दनदना रहा हो, इसलिए भी गुलमोहर की दर्दभरी आवाज कोई न सुन पाया था। कोई भी और वृक्ष उसके शोक में शामिल नहीं हुआ था। हर कोई अपनी जान बचा रहा था। 'यह कैसे हुआ?' गुलमोहर पीड़ा से बिलबिला रहा था- 'मेरे विशालकाय शरीर की यह क्या त्रासदी हो गई? मगर उसकी इस बात का उत्तर देने वाला भी वहां कोई नहीं था। शेष वृक्ष मुंह छिपाए खुद को बर्फीली ठण्ड से बचाने लगे हुये थे। वे सोच रहे थे- हम बच गये तो समझेंगे, जहान बच गया।' वे सभी वृक्ष गुलमोहर की दुदर्शा देखकर भयभीत हो गये थे। उनके मन में आ रहा था- 'अगर ऐसा भीमकाय वृक्ष भी गिर सकता है तो हमारा क्या हाल होगा?'

कुछ समय पूर्व, तूफान से पहले गुलमोहर का वह वृक्ष आकाश की तरफ सर किये थिरकता हुआ अपने रंग में मस्त था। उसके पत्ते गिर गये थे मगर उसके लाल फूल रौशनियों की भांति जगमगा रहे दिखते थे। लोग दूर से ही उन्हें देखकर गदगद भाव से कहते, 'वाहवाह! गुलमोहर कमाल किये हो।' इस विदेशी शैली के शहर में विश्वविद्यालय के छोकरे-छोकरियां यूरोपीय वस्त्रों में सजे-फबे विदेशी भाषा में बातें करते हुये गुलमोहर के सौन्दर्य का वर्णन किया करते और फिर उसकी छांव तले एक दूसरे से आलिंगन करते। गुलमोहर उस समय अत्यन्त प्रसन्न होता। वह गदगद भाव से उन्हें देखता हुआ अपने भाग्य को सराहता था। उसकी संगीतमय जगमगाहट को देखकर कवियों ने कविताएं भी लिखी थीं- 'विदेशी नस्ल का / इस भूमि/बच्चों जैसा,/यही तेरा आकाश...।' गुलमोहर की रोशनी भरपूर सुन्दरता की कथाएं बन गई थीं। चौराहे में खड़ा वह गौरव का प्रतीक होता था। उसके इर्द-गिर्द उगे हुये देशीवृक्ष बिल्कुल श्रीविहीन और नीरस दिखते थे! इसलिए अन्य वृक्ष उसे ईर्ष्या भाव से देखते और बुरा-सा मुंह बना लेते। उनका गुलमोहर से कोई मुकाबला नहीं था। गुलमोहर का जलवा ही निराला था। मगर अब वह बर्फीले तूफान के कारण औंधा गिर पड़ा था, जबकि शेष वृक्ष तूफान की मार को सहन कर गये थे।

'मई जून के दिनों में कभी इतना भीषण तूफान नहीं आया था।' गुलमोहर को गिरा देख लोग कह रहे थे, 'इसे हुआ क्या?'

'मैं इतना दुर्बल तो नहीं था।' गुलमोहर ने अपनी भीमकाया को देखकर खुद को कहा- 'फिर मैं इस मामूली से तूफान को भी सहन न कर पाया?' उसके इस प्रश्न का उत्तर भी उसे किसी ने नहीं दिया। अपने वातावरण में उसने किसी से भी कभी सम्वाद नहीं किया था। किसी भी वृक्ष से उसकी मैत्री नहीं थी। वह किसी से भी बात नहीं करता था। गुलमोहर के निकट खड़े पीपल, शीशम और शहतूत ने उसे गिरते हुये देखा, मगर कुछ कहा नहीं। उन्हें पता था वृक्ष धरती पर गौरव से कैसे खड़े रह सकते हैं। उनके आकाश तक फैले हुये शरीर तूफान के शांत होने के पश्चात भी कह रहे थे- 'देखिये हमें, हम तूफान को [illegible] सकते हैं।'

'अब तुम अनेक बातें करोगे।' गुलमोहर ने उन वृक्षों की बातें सुनकर कहा- 'मगर मैं दुर्घटना का शिकार हो गया हूं। [illegible]या करूं?' संध्या होते-होते विश्वविद्यालय के कर्मचारियों ने सड़कों से बर्फ हटानी शुरू कर दी थी। जब उन्होंने गुलमोहर [illegible] तो उन्हें आश्चर्य हुआ। गुलमोहर गिरा पड़ा था। यह सत्य था।

[illegible]क्या हुआ?' एक कर्मचारी ने कहा- 'इस गुलमोहर की हालत देखो।'

[illegible] कहा- ' इसका तो शरीर ही बहुत बलवान था....।'

[illegible]ौर ने कहा- 'इसके गिरने का कारण मैं जानता हूं।'

'कौन सा?'

'बताऊंगा।' उस कर्मचारी ने कहा- 'रात तक हम इसे काट कर घर ले जायें....

Scanned by CamScanner

'हां, यह ठीक है।' शेष कर्मचारियों ने भी कहा- और वे लोग गुलमोहर को काटने लगे। वे निर्धन लोग थे और उन्हें चार दिनों के ईंधन की चिन्ता ने घेर लिया था।

'अरे यह क्या कर रहे हो?' गुलमोहर ने बिलबिला कर कहा-'तुम लोग मेरे शरीर को क्यों काट रहे हो?'

'तुम अब ईंधन के काम आओगे।'

'मगर मेरे फूलों को तो देखो! कैसे शानदार फूल।'

'अब नहीं लगेंगे...'

'क्यों,अब मेरी शाखाओं को फूल क्यों नहीं लगेंगे?'

'तू उखड़ गया है।'

'मगर मुझे तो तूफान ने गिरा दिया है.....'

'क्यों ?'

'पता नहीं...'

'हमें पता है...'

'फिर मुझे भी बताओ।' गुलमोहर ने भी मासूमियत से पूछा तो कर्मचारी हंसने लगे। गुलमोहर को यह बात अच्छी न लगी। उसके मन में आया-'कल तक तो लोग मुझे आदर और प्रसन्नता से देखते थे। अब मुझे काटते जा रहे हैं। ये लोग भी बड़े कमीने होते हैं। ये कभी भी मेरी पीड़ा को न समझ पायेंगे। फिर उसने चीखकर उन लोगों से कहा-'मुझे काटते क्यों जा रहे हैं? क्या तुम्हें मेरे साथ जरा भी हमदर्दी नहीं हैं....।' गुलमोहर ने उन्हें और भी बहुत कुछ कहा और निरंतर बोलता गया। गुलमोहर के मन की बात को समझकर एक कर्मचारी ने कहा-'हां, तेरी बात ठीक है। इस धरती के लोग केवल जीवित लोगों का ही साथ देते हैं। गिरने वालों से इन्हें बिल्कुल भी हमदर्दी नहीं है।'

'क्यों?' गुलमोहर ने बैचेनी से पूछा तो कर्मचारी ने उत्तर दिया-'मरने वाला किसी का कुछ नहीं कर सकता।'

'क्या कहा?' गुलमोहर बिलबिलाया-'मेरा गौरव देखकर विश्वविद्यालय के छात्र मेरे साथ सम्वाद करते थे।'

'अब वे तेरे निकट भी नहीं आयेंगे। तेरा गौरव खत्म हो गया है।'

'फिर भी मैं बहुत बलवान हूं।'

'मगर जब भूमि में तेरी जड़ें ही नहीं रही तो तू, जीवित भी नहीं रहेगा। तू समझता नहीं इस बात को?'

गुलमोहर को काट रहे कर्मचारियोंने उसे चेताया तो गुलमोहर के मन में आया- 'यह कर्मचारी ठीक कह रहा है....मगर आश्चर्य है कि भूमि में से मेरी जड़े कैसे निकल गईं?'

वह अपनी शोचनीय दशा को देखकर दुखी भी हो रहा था और आश्चर्यचकित भी था। कर्मचारियों ने गुलमोहर के तनों को काटकर इकट्ठा करना शुरू कर दिया। उन्हें देखकर वहां और भी बहुत से लोग इकट्टठे हो गये और वे भी गुलमोहर को काटने लगे। वे कह रहे थे-'चार दिनों का ईंधन ही सही।'

'अरे मैं अब ईंधन रह गया हूं?' गुलमोहर ने चीख कर पूछा, मगर लोगों ने उसकी बातों की ओर ध्यान नहीं दिया और उसे काटते रहे। वे लोग बहुत प्रसन्न थे। उस समय वे सोच रहे थे- 'सड़कों पर से बर्फ हटाते हुये हमें इनाम में गुलमोहर मिल गया है।' जब वे लोग गुलमोहर को काट रहे थे और भीड़ बढ़ गई थी तो उस भीड़ को देखते कुछ लोग भी वहां पहुंच गये थे-'क्या हुआ?' फिर [illegible] उन्होंने देखा कि लोगों ने गुलमोहर काट दिया था तो कहने लगे-'कितना मनमोहक वृक्ष था और इसके फूल कितने लुभावने लगते [illegible]

'मगर यह बर्फीले तूफान को सहन कर पाया।'

'मगर क्यों?' अनेक नजरों ने एक दूसरे से पूछा तो कुछ सूझवान लोगों ने गुलमोहर की उखड़ी हुई [illegible] ता। वे [illegible] ने अभी उन्हें नहीं काटा था। गुलमोहर की जड़ें बहुत छोटी थी। उन जड़ों पर हाथ लगाकर एक सूझवान ने क[illegible] जिसकी जड़ें अपनी भूमि में गहरी न लगी हुई हों, वह जमाने के बेदर्द तूफान का मुकाबला नहीं कर सकता।' [illegible]ते।

'तो यह बात थी।' गुलमोहर ने उस सूझवान की बात सुनकर कहा और अंतिम सांस लेकर बेजान [illegible]

-१६-गोल्डन ऐवेन्यू फेज-१, जालन्धर-१४४०२२

Scanned by CamScanner

गीत

डॉ. नागेंद्र

मांगें तो भीख मिला करती,
मांगे से प्यार नहीं मिलता।
दुःख की तो दुनिया मिल जाती,
सुख का संसार नहीं मिलता।
ये फूल साधना के फल हैं,
मतवाले बनकर मत घूमो,
बिन मांगे मोती यहां मिलें,
फूलों का हार नहीं मिलता॥
रंग देने से पहले सिल पर
मेंहदी-सा पिसना पड़ता है,
कर्त्तव्य बिना इस धरती पर
यों ही अधिकार नहीं मिलता॥
जब तक जन बैठ नहीं जाता
उन बंद किबरियों के भीतर,
लांछना सहज मिल जाती है
प्रेमिल उपहार नहीं मिलता॥
यों तो जीवन निर्वाह हेतु
कितने ही साधन हो सकते,
भ्रम के अवलंबन मिल जाते
सच्चा आधार नहीं मिलता॥

-प्रभादीप,१२ इंदिरा कालोनी,
रामपुर-२४४९०१

क्षणिका

-जलाल अहमद खां तनवीर

खून कर सकते हो फूलों का
...ी पाँखुरियों का वजूद
...चुरा सकते खुशबू।

...पाल, पो.माजनपुर,
...ाबंकी-२२५४०६

...रिंद्र कुमार लाहा

...राम तेरे दरबार में
भक्तों की भीड़,
स्वयं राम आकर देखें
भक्तों के आकर नीर।

-२७, ललितपुर कालोनी, ग्वालियर, म.प्र.

मुक्तक

बी.डी. मित्तल शूल

नफरतें बढ़ रही हैं, दूरियां बढ़ रहीं,
जीने की रोज दुश्वारियां बढ़ रहीं।
आदमी, आदमी का ही दुश्मन बना,
जाने क्यों शूल मजबूरियां बढ़ रहीं।

-भूतेश्वर, मथुरा-४

हाइकु

कमलेश भट्ट कमल

जीते जी सूर्य
नहीं सौंपेगा सत्ता
अंधियारे को।

ज्यों-ज्यों घटेगा
दिल का क्षेत्रफल
दर्द बढ़ेगा।

-१४५, कविनगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)

छंदराज ॐ पारदर्शी के दोहे

भटके सच्ची राह से जब शिक्षित इन्सान
मात 'पारदर्शी' पिता, जीवित मरे समान।
जहां नहीं संस्कार-धन, वहां नहीं उत्थान,
समझ पारदर्शी यही सत्य सदा इन्सान।
आभूषण संस्कार का पहना जिसने अंग,
प्रगति पारदर्शी करे बढ़ता नित्य अभंग।
संस्कारों से मनुज की होती है पहचान,
प्राप्त पारदर्शी करे सभी जगह सम्मान।
भौतिकता इतनी बढ़ी भूले निज पहचान,
भटक पारदर्शी गयी पश्चिम में संतान।
संस्कारी हर कार्य को करता सोच-विचार,
करे पारदर्शी सदा दुखियों पर उपकार।

-२६१, उत्तरी आयड,उदयपुर-३१३००१

Scanned by CamScanner

चार वि... भारत सरकार पंजीकरण संख्या–51714/87

शोधार्थियों के लिये एक महत्वपूर्ण पुस्तक

विचार और रस

(रस-निष्पत्ति का वैचारिक विवेचन)

लेखक--रमेशराज

राष्ट्रीय बाल कविताएँ

कवि--रमेशराज

प्राप्ति स्थल- बजरंग प्रकाशन, सागरपुर, दिल्ली

महत्वपूर्ण तेवरी संग्रह

(१) अभी जुबाँ कटी नहीं — संपादक-रमेशराज
(२) कबीर ज़िन्दा है — संपादक- रमेशराज
(३) इतिहास घायल है — संपादक-रमेशराज
(४) एक प्रहारः लगातार — तेवरीकार- दर्शन बेजार
(५) देश खण्डित हो न जाए — तेवरीकार- दर्शन बेजार

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़-२०२००१

डाक पंजीकरण संख्या–ए.एल.जी./67/08/2010

प्रतिष्ठार्थ–

संपादक/प्रकाशक/ मुद्रक रमेशराज द्वारा सार्थक सृजन प्रकाशन के १५/१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट अलीगढ़ के लिये श... प्रैस हेतु शिवम् प्रिंटर्स महेंद्र नगर अलीगढ़ से मुद्रित।